१९

१/१५ ता. १५-२-७०

जीवन जागृति केन्द्र

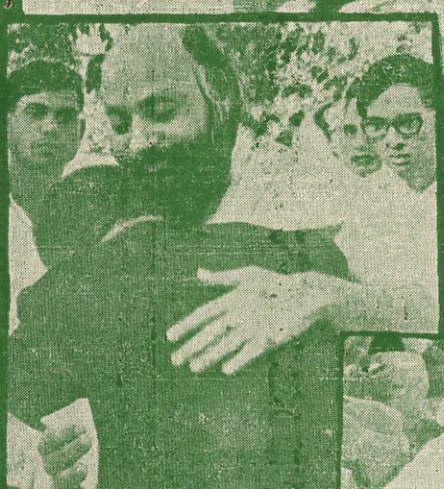

ध्यान

शीघ्र प्रकाशित :

प्रेमी साधकों को खुशखबरी

आचार्य श्री की साधना

जगत् की

अमूल्य कृतियाँ

(१) सत्य की पहली किरण

(२) प्रभु की पगडंडिया

(३) सत्य का सागर शून्य की नाव

छायाकृतियाँ : जूनागढ़ साधना शिबिर से

छायाकार : लक्ष्मी विजय स्टुडियो, जूनागढ़

आप भी एक डुबकी लें :

जूनागढ़ साधना शिविर : मेरे अनुभव

—शिव

जूनागढ़ साधना शिविर ९, १०, ११, १२ दिसंबर '६९ को श्री मगनभाई तन्ना व डॉ० हेमन्त शुक्ल के संयोजकत्व में आयोजित था। इस शिविर में सम्मिलित होने का अवसर मुझे भी लगा। इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूं। यह दूसरा शिविर था जिसमें मैं सम्मिलित हो सका। पहला नारगोल····।

आचार्य श्री के साधना-शिविर में सम्मिलित होने से मुझे कितने व कैसे-कैसे लाभ हुए कहना कठिन है। मैं तो लाभ ही लाभ अनुभव करता हूं। उनमें से एक दो की बातें करूं। पहली बात तो हम जिस उद्देश्य से साधना शिविर में सम्मिलित होते हैं, उसकी ही करूं। मैं स्वयं को जानना चाहता हूं, इसलिए ही शिविरों में जाता हूं। मेरा ख्याल है, यही उद्देश्य प्रत्येक शिविरार्थी का रहता है। जिसका उद्देश्य यह न रहता हो, उसे दरअसल शिविर में आना ही नहीं चाहिए। पर मेरी किसी ऐसे व्यक्ति से भेंट नहीं हुई जो शिविरार्थी हो और उसका उद्देश्य यही न हो। अस्तु.

यद्यपि ध्यान कहीं भी, किन्हीं भी परिस्थितियों में संभव है, पर मेरा अनुभव है कि प्रारंभिक अवस्था में परिस्थितियों एवं वातावरण की अनुकूलता बड़ा महत्व रखती है, बड़ी उपयोगी होती है। उसका हमारे चित्त पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है, यह अनुकूलता मैंने जो दो शिविर 'अटेण्ड' किये अर्थात नारगोल और जूनागढ़, दोनों में ही थी। नारगोल में समुद्र-तट, सरू-वन, चारों ओर बिछी चमचमाती रेत, ऊपर से झरती हुई चांदनी...। जूनागढ़ में निर्जन आम्र-कुंज, पक्षियों की टुट्टू टुट टुट.... सभी कुछ बड़ा प्राकृतिक बड़ा मनोहारी···। ऐसी जगहों पर बैठने पर आदमी सहज ही ध्यान में जैसे होने लगता है।

आचार्य श्री जूनागढ़ शिविर में प्रातः व संध्या एक-एक घण्टे का भाषण करते थे। उसके बाद १५-१५ मिनट का ध्यान का प्रयोग कराते थे। दोपहर २ से ३ व्यक्तिगत मुलाकातें। अपरान्ह में १ घन्टे का मौन। वैसे तो आचार्य श्री का भाषण सुनना भी मुझे ध्यानस्थ कर देता है, बहुतों को कर देता होगा। पर उनकी बताई हुई पद्धति से ध्यान में होना सचमुच एक आनंद है। मन की शाँति क्या है इसका स्पष्ट बोध होता है। एक दिन अपरान्ह के मौन की बात करूं। घण्टे भर का समय समाप्त हो गया। सभी उठ-उठ कर जाने लगे। मैं पड़ा ही रहा। मैं अद्भुत शांति का अनुभव कर रहा था। आंखें मेरी बंद थीं। हाथ पैर, सारा शरीर ही एकदम शिथिल। चित्त एकदम शांत। मैं जानता था कि सब चले जा रहे हैं और समय हो गया।। मैं यह भी जान रहा था कि मेरा शरीर बहुत बहुत आराम व शांति की स्थिति में है। लेकिन सब जा रहे हैं तो मुझे भी चलना चाहिए। मैं उठना चाहा, उठ नहीं सका। हाथ हिलाना चाहा, वह नहीं हिला। पैर हिलाना चाहा, वह भी नहीं हिला। फिर मैं पड़ा ही रहा उठने का ख्याल ही छोड़ दिया और शांति का आनंद भोगता रहा। १५-२० मिनट और यों ही आनंद में बीत गए। सहसा मैंने अनुभव किया कि मेरी छाती, मेरी नाभी, मेरी पीठ, मेरा

सिर-माथा सब का सब बड़ी तेजी से धड़क व उछल रहा है। मुझे लगा हर जगह से मेरे शरीर में एक विस्फोट हुआ चाहता है। शरीर हर तरफ से फटकर चिन्दी-चिन्दी हो जाना चाहता है। यह बड़ा भयावना अनुभव था। लगता था इसे सहना कठिन है तभी मुझे ख्याल आया कि सहना कठिन है तो उठ जावो। इस बार मैं उठ सका लेकिन बहुत धीमे। मुझे लगा अब तक मैं कहीं और था, अब यहां आ गया हूं। यहां की हर चीज में एक नवीनता और ताजापन का भी बोध हुआ। मैंने देखा सब जा चुके थे। सिर्फ सेवन्ती भाई जिनके साथ मैं ठहरा था, १० फीट दूरी पर टहल रहे थे और मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं उठा और उनके साथ हो लिया। मैं बोला नहीं। वे भी नहीं बोले। मैं अभी भी बड़ी शांति एवं आनंद में था। बोलने-चालने का मन ही नहीं होता था। बस उस शांति में डूबा रहूं, कोई बुलाये न, ऐसा ही लगता था। बाद में जब मैं बोला और फिर ज्यों-ज्यों बात करता था, त्यों-त्यों वह शाँति घटती गई, घटती गई। मैंने यहां यह अनुभव किया कि आचार्य श्री शिविरों में मौन रहने का निवेदन क्यों करते हैं? मौन रहने के क्या लाभ हैं। प्रत्येक ध्यान में किसी न किसी मात्रा में शांति का मुझे अनुभव हुआ और उठने पर भी वह रहती थी, जब तक बोलता नहीं था। बातचीत शुरू किया कि वह भी जानी शुरू हो जाती थी। मेरा ख्याल है कि ध्यान से उठने के बाद भी हम एक प्रकार से ध्यान में ही होते हैं। भीतर की उस शांति की ओर ख्याल रहता है। उसे जैसे संजोये से रहते हैं। और बोलने पर भीतर की शाँति से ध्यान हट जाता है। हम बाहर आ जाते हैं और भीतर शांति खोती चली जाती है।

पर इतना तो मुझे स्पष्ट हो गया कि आचार्य श्री के बताये अनुसार ध्यान करके एवं खुद के साथ सहयोग करके [अर्थात ज्यादा से ज्यादा मौन रहकर] निश्चित ही संपूर्ण शांत हुआ जा सकता हैं। बोलने से अशाँत होते हैं, यह भी तो एक अनुभव ही है। आचार्य श्री के साधना-शिविरों के बाद भी ध्यान जारी रखने की आवश्यकता होती है। जो शिविरों में जाते हैं उनको इस आवश्यकता का स्वयं ही बोध होता है। मैं भी घर पर ध्यान में होता हूं पर आचार्य जी की उपस्थिति में, उनके सान्निध्य में जब भी ध्यान में होने का सुयोग मिला है, वह अधिक लाभकारी मालूम हुआ है। उनके सानिध्य में ध्यान अधिक गहरा गया है। काश कभी ऐसा हो सके कि एक एक कक्ष में —चाहे छोटे ही हों—एक एक ही शिविरार्थी ठहर सके। इससे मौन रहने में बड़ा सहयोग मिल सकता है।

दूसरी एक बात जो आचार्य श्री के शिविरों के संबंध में कहना चाहता हूं वह यह है कि उनमें सम्मिलित होकर हम एक ऐसी जगह हो आते हैं जो बाकी संसार में कहीं देखने को भी नहीं मिलता। हम ऐसे समाज में रह आते हैं— भले ही चार दिन को सही —जैसे समाज की महापुरुषों ने सदैव कल्पना की है। मैं तो चार दिनों को स्वर्ग में ही रह आता हूं। वहां पूरे समय इतने आनंद में होता हूं, भीतर से इतना उल्लसित ..... कि वह वर्णन से परे है। अभी तक इस दुनियां में जहां कहीं भी जिस किसी समाज में भी जाने का मुझे अवसर मिला है वहाँ हमेशा यही पूछा गया है कि आप कौन जाति हैं? कुछ अधिक पढ़े लिखे हुए पूछने वाले तो पूछेंगे— क्या काम करते हैं और कि कितना वेतन मिलता है? बहुत पढ़े लिखे हुए तो पूछेंगे—शिक्षा कितनी है? आचार्य श्री का साधना शिविर भी चार दिनों के लिए एक दुनिया ही बन गया होता है। एक दुनिया हमारी दुनिया से सर्वथा भिन्न, वहाँ कोई किसी से उसकी जात पूछता मुझे नहीं दिखा। वहां स्त्री पुरुष का भेद मुझे नहीं दिखा। वहां गरीब अमीर का फर्क नहीं दिखा। वहां कोई इस तरह के नॉन्सेन्स प्रश्न करते मुझे नहीं दिखे। वहां तो सब जाने किस अलौकिक प्रेम में डूबे नहाये होते हैं। जो भी सामने पड़ते है, लगता हैं सब अपने ही हैं। वहां तो अकसर किसी का नाम भी कोई नहीं पूछता। इसका मतलब यह नहीं कि सब एक दूसरे से कटे कटे रहते हैं। नहीं मैं कहना यह चाहता हूं कि वहां सब इतने जुड़े रहते हैं, इतने आत्मीय, इतने अपने,

इतने प्रेम पूर्ण कि कुछ पूछना कोई अर्थ नहीं रखता। पूछने जितना अलगपन ही नहीं प्रतीत होता और एक ऐसे जगत में, चार दिन के लिए भी रह आना मैं कम सौभाग्यपूर्ण नहीं मानता। वह स्वर्ग ही था चार दिनों को, जहां कोई दुख नहीं था। कोई चाह नहीं थी। जहां प्रेम के सिवा कुछ भी नहीं था।

क्रांति दीप

एक व्यक्ति ने कन्फ्युसियस से जाकर कहा : "मैं बहुत थक गया हूं। अब विश्रांति चाहता हूं। क्या कोई मार्ग है ?" कन्फ्युसियस ने उससे कहा : "जीवन और विश्रांति विरोधी शब्द हैं।" जीवन चाहते हो तो विश्रांति मत चाहो, विश्रांति तो मृत्यु है। उस व्यक्ति के माथे पर चिन्ता की रेखायें सिमिट आईं और उसने पूछा : "तो क्या मुझे कभी विश्रांति मिलेगी ही नहीं ?" कन्फ्युसियस ने कहा : "मिलेगी। अवश्य मिलेगी।" और सामने फैले कब्रगाह की ओर संकेत करके कहा : "इन कब्रों को देखो। इन्हीं में विश्रांति है। इन्हीं में शांति है।"

मैं कन्फ्युसियस से सहमत नहीं हूं। जीवन और मृत्यु भिन्न भिन्न नहीं हैं। जो है, वे उसकी ही आती जाती श्वासों की भांति हैं। जीवन न तो मात्र कर्म है, और न मृत्यु की मात्र विश्रांति ·····वस्तुतः तो जो जीवन में ही विश्रांति में नहीं है, वह मृत्यु में भी शांति में नहीं हो सकता है। क्या दिवस की अशांति रात्रि की निन्द्रा को भी अशांत कर नहीं देती है ? क्या जीवन भर की अशांति की प्रतिध्वनियां ही मृत्यु में भी पीड़ा नहीं देंगी ? मृत्यु तो वैसी ही होगी, जैसा कि जीवन है। वह जीवन की विरोधी नहीं, वरन् जीवन की ही पूर्णता जो है। जीवन में अकर्मण्यता न हो, यह तो ठीक है, क्योंकि वह तो जीते जी ही मुर्दा होना है। लेकिन जीवन मात्र कर्म ही न हो। यह भी जीवन नहीं, जड़ता है····· जड़ यांत्रिकता है। जीवन की परिधि पर कर्म हो और केन्द्र में अकर्म तो ही जीवन की परिपूर्णता फलित होती है। बाहर कर्म, भीतर विश्रांति। बाहर गति, भीतर स्थिति। कर्म पूर्ण व्यक्तित्व जब शांत आत्मा से संयुक्त होता है तो ही पूर्ण मनुष्य का जन्म होता है। ऐसे व्यक्ति का जीवन तो शांत होता ही है, ऐसे व्यक्ति की मृत्यु भी मोक्ष बन जाती है।

—★—

अध्यात्म है संस्कार मुक्ति

[आचार्य श्री से श्री हरिकिशन दास अग्रवाल द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर]

प्रश्न : यदि आप अध्यात्म का ही प्रचार करें तो क्या यह अच्छा नहीं होगा ?
आप बीच बीच में राजनीति तथा अन्य विषयों की चर्चा क्यों ले बैठते हैं ?
:मैं जीवन को देखता हूं उसकी समग्रता में ।
और ऐसी समग्र दृष्टि (Total Vision) को ही कहता हूं अध्यात्म ।
राजनीति एक विषय है, गणित एक विषय है, नीति एक विषय है ।
अध्यात्म उसी भाँति एक विषय नहीं है ।
अध्यात्म है पूर्ण जीवन ।
अध्यात्म है जीवन को उसकी अखंडता में जानना और जीना ।
इसलिये राजनीति अपने खंड में जी सकती है, गणित अपने खंड में, लेकिन अध्यात्म नहीं ।
क्योंकि अध्यात्म का कोई खंड ही नहीं है ।
अध्यात्म तो पूर्ण जीवन की कला है ।
वह तो पूर्ण जीवन को स्पर्श करेगा ।
यद्यपि राजनीति नहीं चाहेगी कि अध्यात्म उसे छुये ।
न ही विज्ञान ऐसा चाहेगा ।
न ही वाणिज्य ।
क्योंकि अध्यात्म जिसे छूता है, उसे ही बदल देता है ।
राजनीति पर अध्यात्म की छाया पड़ते ही वह वही नहीं हो सकती है, जो है ।
और न ही विज्ञान वही होगा ।
और न ही वाणिज्य ।
इसलिये यह उनके हित में है कि अध्यात्म उन्हें न छुये ।
लेकिन यह अध्यात्म के हित में नहीं है,
अध्यात्म तो खंड से बंधते ही रक्तहीन हो जाता है और पीला पड़ जाता है ।
वह तो अखंड का होकर ही बस स्वस्थ हो सकता है ।
लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अध्यात्म राजनैतिक बने या कुछ और ।
उसे स्वयं कुछ भी नहीं बनना है ।
उसका तो दृष्टिपात ही पर्याप्त है ।
वह देखे भर राजनीति की ओर, विज्ञान की ओर, वाणिज्य की ओर ।
उसकी दृष्टि .....उसका जागरूक होना ही क्रांति बन जायेगा ।
मैं इसी दिशा में प्रयास कर रहा हूं और करता रहूंगा ।

लेकिन अनेक न्यस्त स्वार्थी को इससे भय लगता है।
वे अध्यात्म की भी सीमायें तय करना चाहते हैं।
उनका यह प्रयास स्वयं को बचाने की चेष्टा है और अध्यात्म को मारने की।
शोषण की व्यवस्था नहीं चाहेगी कि अध्यात्म समाज व्यवस्था में रुचि ले।
क्योंकि अध्यात्म शोषण के जाल को कैसे बर्दाश्त कर सकता है।
और जो अध्यात्म करता है वह निर्वीय और नपुन्सक है (Impotent) है।
वस्तुतः वह अध्यात्म ही नहीं है।
और ऐसा थोथा अध्यात्म ही प्रचलित है।
ऐसे अध्यात्म ने निश्चय ही अफीम का कार्य किया है।
मैं ऐसे किसी भी अफीम के व्यवसाय में सम्मिलित होना नहीं चाहता हूं।
और रह गई अध्यात्म के प्रचार की बात।
तो मैं किसी भी भाँति के प्रचार में उत्सुक नहीं हूं।
मनुष्य को सब भाँति के प्रचार से ही तो मुक्त होना है।
जब चेतना सब प्रकार के प्रचार से ऊपर उठती है, तभी उसे जान पाती है 'जो है।'
प्रचार है किसी को संस्कारित करना (Conditioning)
और आध्यात्म है संस्कार मुक्ति (Unconditioning)
इसलिए राजनीति का प्रचार (Propaganda) हो सकता है।
लेकिन अध्यात्म का नहीं।
और जो अध्यात्म को भी प्रचार बनाते हैं, वे छद्मवेष में राजनीतिज्ञ ही हैं।
मैं प्रचारक नहीं हूं।
न ही कोई उपदेशक हूं।
मैं तो निद्रा तोड़ना चाहता हूं।
मैं तो लोगों को उनकी मूर्च्छा से झकझोरना चाहता हूं ताकि वे स्वयं देख सकें और सोच सकें।
मैं उनके लिए नहीं सोचना चाहता हूं।
प्रचारक यही करता है।
उपदेशक यही करता है।
वे सब मिलकर लोगों को सुलाते हैं।
क्योंकि सिर्फ सोये हुये लोग ही विश्वास कर सकते हैं, नेता बना सकते हैं, गुरू बना सकते हैं।
जागा हुआ व्यक्ति तो स्वयं अपना मार्ग चुनता है।
वह किसी का शिष्य या अनुयायी नहीं होता है।
शिष्य और अनुयायी तो सिर्फ मूर्छित व्यक्ति ही होते हैं।
निश्चय ही सोये हुये व्यक्तियों को जगाने के प्रयास से वे नाराज होते हैं।
लेकिन उनकी नाराजगी से भी मैं खुश होता हूं।
क्योंकि उनकी नाराजगी भी तो जागने की ही शुरूआत है।

●●●

मनोचिकित्सा नहीं मनोक्रांति

(शिक्षा मनोविज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर में दिया गया एक प्रवचन) संकलन : श्री नरेन्द्र

मनोचिकित्सा पर कुछ कहूँ उसके पहले यह समझ लेना जरुरी है कि मनोरोग मनुष्य ने स्वयं ही निर्मित किये हैं। हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा धर्म मनोरोगों को पैदा करने में मूलभूत रहा है। जैसा आज तक मनुष्य को हमने निर्माण करने की कोशिश की है उससे ही मनोरोग पैदा हुए हैं। और जब तक यह बात ठीक से न समझ ली जाये तब तक मनोचिकित्सा असंभव है। और जिसे हम आज मनोचिकित्सा या Psychotherapy कहते हैं वह स्वस्थ नहीं बनाती, केवल इतना रुग्ण भर रह जाने देती है जितना होने से समाज का काम चल जाये। रोग की भी सीमाये हैं। सच तो यह है कि मन की दृष्टि से हम सब कहीं न कहीं रोगी हैं। कुछ लोग इतने रोगी हैं कि उन रोगियों के साथ काम चलाने में बाधा नहीं पहुँचती। वे दुकान चला लेते हैं, आफिस में काम कर लेते हैं, कालेज में पढ़ा लेते हैं या पढ़ लेते हैं। उनका रोग इतना बड़ा नहीं हो गया है कि उन्हें समाज के बाहर अलग करने की जरूरत पड़े। फिर कुछ लोगों का रोग ज्यादा बढ़ जाता है और समाज के भीतर जीना कठिन हो जाता है।

मनुष्य के मनोरोग और उनके संबंध में समझने के लिए यह ध्यान रखना जरुरी है कि हमारी पूरी मनुष्यता मानसिक रुप से बीमार है। फर्क हममें और दूसरों में सिर्फ परिमाण के है, Quantity के हैं, गुण के नहीं, Quality के नहीं। ऐसा नहीं है कि कुछ लोग मानसिक रुप से स्वस्थ हैं और कुछ लोग मानसिक रुप से बीमार हैं। मात्रा का भेद है Degree का भेद है। इसलिए हममें से कोई भी किसी भी क्षण बीमार हो सकता है Boiling point आने की बात है। ९८° पर पानी गरम हो रहा है, ९७° पर पानी गरम हो रहा है, ९६° पर पानी गरम हो रहा है, ९९° पर गर्म हो रहा है वही १००° पर भाप बन जाता है। १००° पर जो पानी भाप बन रहा है उससे ९९° पर गरम होने वाला पानी कह रहा है कि क्या तुम पागल हो? तुम भाप क्यों बने जा रहे हो? तुम अब पानी न रहे। लेकिन ९९° पर जो पानी गरम हो रहा है वह सिर्फ १° के फासले पर है, थोड़ी देर में वह भी भाप बन जायेगा। उन दोनों के बीच जो फर्क है वह गुण का नहीं है, परिमाण का है, मात्रा का है। मनुष्य और मनुष्य के बीच जो फर्क है वह रोग की मात्राओं का है। और यह भी सभव है कि जो लोग हमारे बीच मानसिक रुप से बीमार हो जाते हैं वे सिर्फ इसलिए बीमार हो जाते हैं क्योंकि ज्यादा संवेदनशील हैं, ज्यादा Sensitive हैं। हम कम संवेदनशील हैं, कम Sensitive हैं इसलिए सब पागलपनों को झेलते हुए भी जिन्दगी गुजार लेते हैं। पर बड़ी हैरानी की बात है कि बड़े चित्रकार, बड़े कवि, बड़े लेखक अक्सर पागल हो जाते हैं, खेत में काम करने वाला किसान नहीं, गड्ढा खोदने वाला मजदूर नहीं। चिन्तनशील, विचारशील, संवेदनशील लोग अक्सर रुग्ण और विक्षिप्त हो जाते हैं। ऐसा अब तक यही समझा जाता था कि कुछ भूल है उनकी। लेकिन अब ऐसा समझा जा सकता है कि भूल उनकी नहीं है, हमने जो समाज व्यवस्था की है भूल उसकी है।

मैंने एक कहानी पढ़ी है। मैंने सुना है कि कहीं दूर अज्ञात पृथ्वी के कोने में पहाड़ों के बीच घिरा एक ऐसा गाँव है जहाँ बच्चे पैदा होते से ही पागल होना शुरु हो जाते हैं। और उनके पागल होनेका कारण बहुत अद्‌भुत है। और वह कारण यह है कि उस पहाड़ी पर बसे गाँव की धारणा रही है कि सिर के बल खड़े होना ही खड़े

होने का ठीक ढंग है। वहाँ बच्चों को बचपन से ही सिर के बल खड़ा होना, शीर्षासन करना सिखाया जाता रहा है। लेकिन जिन्दगी सिर के बल खड़े होने से चलायी नहीं जा सकती। खाना खाना हो, सोने जाना हो, काम करने जाना हो तो सिर से नीचे उतर कर पैर से काम करना पड़ेगा। लेकिन उस गाँव में जब भी कोई पैर का उपयोग करता है तो अपने को अपराधी अनुभव करता है guilty अनुभव करता है क्योंकि उस गाँव की मान्यता, उस गाँव के धर्म, उस गाँव के वेद यही कहते हैं कि जो सिर के बल खड़ा हो वही तपस्वी, वही ठीक आदमी है, वही मनुष्य है तो जिन्हे सिर से नीचे उतरकर कभी पैदल चलने का काम करना पड़ता वे अपने को अपराधी अनुभव करते हैं, पश्चाताप् करते हैं। हाँ कुछ लोग, इतने expert इतने विशेषज्ञ हो गये हैं वे सिर के बल खड़े ही भोजन ले लेते हैं और सिर के बल खड़े ही निद्रा ले लेते हैं। वे गाँव में, उस गाँव में महात्माओं की तरह पूजे जाते हैं। वह गाँव पूरा का पूरा पागल हो गया है। जो सिर के बल खड़े हैं वे इसलिए पागल हो गये हैं कि वे सिर के बल खड़े होने में समर्थ हो गये हैं। जो सिर के बल खड़े नहीं रह पाते हैं वे पश्चाताप अपराध और guilt की वजह से पागल हो गये हैं क्योंकि वे सिर के बल खड़े नहीं हो पा रहे हैं। जब मैंने यह कहानी पढ़ी तो मैं हैरान हुआ कि ऐसा भी कोई गांव होगा। मैं बहुत सोचने लगा लेकिन जितना मैंने समझने की कोशिश की उतना मुझे पता चला कि कहीं कोई ऐसा गांव नहीं है। वह इस पूरी पृथ्वी की कहानी है। और हम सबकी भी आज तक की इस सभ्यता ने सिर के बल खड़े होने के लिए मजबूर किया है। जो खड़े हो जाते हैं वे इसलिए पागल हो जाते हैं कि वे खड़े हो गये और जो खड़े नहीं हो पाते इसलिए पागल हो जाते हैं कि वे उन्हें पश्चाताप् Guilt और पाप घेर लेते हैं कि वे खड़े नहीं हो पा रहे हैं।

मनुष्य की रुग्णता में, मनुष्य की विक्षिप्तता में सबसे बड़ा कारण यही है। और यह विक्षिप्तता सामूहिक है Universal है। इसमें कोई एक आदमी पागल है ऐसा नहीं है। सारे आदमी पागल हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि कोई स्वस्थ आदमी हो जाये पर यह भूल चूक है जो हमारे समाज से बच जाये संस्कृति से बच जाये। लेकिन हम बचने नहीं देते।

हेनरी थारो विश्व बिश्व विद्यालय से वापिस लौटा तो उसके गांव के लोगों ने उसका स्वागत किया। वह विश्वविद्यालय का पहला स्नातक था और उस गांव के एक बूढ़े ने कहा कि मैं इसका स्वागत करता हूं क्योंकि यह विश्वविद्यालय से अपने को बचाकर वापिस लौट आया है। एकदम से लोगों ने समझा नहीं कि उस बूढ़े का क्या मतलब है। उस बूढ़े ने जब कहा कि मैं उसका स्वागत करता हूं कि वह University से अपने को बचाकर लौटा है। बिना पागल हुए वापिस लौटा है। हमारी सारी व्यवस्था शिक्षा की, समाज की, संस्कारों की मनुष्य को रुग्ण करने का काम करती रहीं हैं। मनुष्य रुग्ण होता चला गया हैं। और यह मैं उसी को कह रहा हूं रुग्ण किसी एक व्यक्ति को नहीं मनुष्यता को। मनोचिकित्सा में पहिली बात जो ध्यान में ले लेने योग्य है वह यह है कि मनुष्यता रुग्ण है, मनुष्य नहीं। कोई एक मनुष्य नहीं कि बाकी लोग उस पर दया कर सके और इलाज कर सकें।

हम सब रुग्ण हो गये हैं और इस रुग्णता के पीछे कारण क्या है? कारण यह है कि हमने मनुष्यता को अस्वाभाविक करने की चेष्टा की है। हमने उससे ऐसे आदर्शों की अपेक्षा की है जो असंभव हैं सिर के बल खड़े करने की हमने आकांक्षा की है। हमने मनुष्य से ऐसी अपेक्षायें की हैं कि वे उसे पागल कर ही देंगी। हमारी सारी अपेक्षायें, हमारे सारे आदर्श पागल करने वाले हैं, रुग्ण करने वाले हैं। जैसे आता तो है मनुष्य पशुओं से, लेकिन हम सोचते रहे हैं कि मनुष्य है ईश्वर का बेटा। और मनुष्य का काम है वह ईश्वर जैसा हो जाये। आया तो है मनुष्य पशुओं से, उसके जीवन की सारी व्यवस्था, उसके शरीर की सारी व्यवस्था पशुओं से आयी है। लेकिन हम उसे जो आदर्शों की व्यवस्था देते हैं वह किसी काल्पनिक परमात्मा के

इर्द गिर्द देते हैं। हम आदमी को भगवान बनाना चाहते हैं। भगवान बनाने की कोशिश में कोई आदमी भगवान तो नहीं बनता आदमी भी नहीं बन पाता है। मनुष्य की पशुता अगर सहज रूप से स्वीकृत हो जाये तो हम भगवान तो नहीं बन सकेंगे पर आदमी बन सकते हैं। आदमी स्वस्थ बन सकता है। भगवान बनने की कोशिश रुग्ण करेगी ही। वह मन को neurotic करेगी विक्षिप्त करेगी, वह भीतर कहीं बीमार करेगी। अगर किसी व्यक्ति को असंभव आदर्श में डाल दिया जाये तो उसका अंतिम परिणाम तनाव ही हो सकता है। stress का और कोई मतलब नहीं होता, तनाव का एक ही मतलब होता है कि कुछ ऐसा असंभव हमें आकर्षित कर रहा है जिसे हम पा भी नहीं सकते और जिसे हम छोड़ भी नहीं सकते। जिसे हम पा नहीं सकते क्योंकि वह असंभव है और जिसे हम छोड़ भी नहीं सकते क्योंकि हमारा पूरा संस्कार पूरी conditioning उसे पाने के लिए थोपा गया है।

मैं एक आश्रम में मेहमान था। तीन या चार दिन वहाँ था। दूसरे दिन रात को आश्रम की एक युवती मेरे पास आयी और उसने कहा कि आपसे मैं अपने हृदय की बात कर सकती हूं क्योंकि आप की दो दिन बातें सुनीं तब आप मेरी तरफ देखकर निंदा के भाव से नहीं भरेगें मैने आपकी बात सुनी आपको अपनी बात कह सकती हूं। मैंने उससे कहा कि तुम अपनी बात कहो तो उसने कहा कि मैं मुश्किल में पड़ गयी हूँ। उस युवती ने किसी संन्यासी, किसी साधु के सतसंग में कुछ दिन बिताये थे और संन्यासी ने उसे ब्रम्हचर्य की प्रतिज्ञा दिलवायी थी। भावावेश में उसने प्रतिज्ञा ले ली थी। फिर उसी आश्रम में प्रेम तो देखता नहीं है कि वहाँ आश्रम है वहाँ नहीं जाना चाहिए। प्रेम तो सन्यासी के में आश्रम भी प्रवेश कर जाता है। उसी आश्रम में एक युवक से उसका प्रेम हो गया था। वह युवक भी ब्रम्हचर्य की प्रतिज्ञा लिये हुए था। वे दोनों बड़ी कठिनाई में पड़ गये। ब्रम्हचर्य की कसम लिये हुए थे प्रेम बीच में आ गया। प्रेम को भी नहीं छोड़ सकते थे, ब्रम्हचर्य को भी नहीं छोड़ सकते थे। फिर वे रुग्ण होना शुरु हो गये। फिर बात खुली होगी। पश्चाताप से भरे थे, सन्यासी गुरु को कहा होगा। और उन्होंने कहा कि यह तो बड़ा बुरा हुआ। लेकिन अगर ऐसा है तो दोनों विवाह कर लो। वे दोनों खुश हुए लेकिन उन्हें पता नहीं जहाँ पागलपन के नियम चलते हैं वहाँ पागलपन के नियमों का कोई अंत नहीं है, उनकी शृंखला है। सन्यासी ने अपने ही आश्रम में लोगों को इकट्ठा करके हजारों लोगों के सामने उन दोनों का विवाह करवा दिया और विवाह के बाद जब सारे लोग आर्शीवाद देते थे तब उस सन्यासी ने उनके गुरु ने उन्हें आर्शीवाद दिया और कहा कि तुम दोनों अब फिर ब्रम्हचर्य का व्रत ले लो ताकि तुम दोनो जीवन भर ब्रम्हचर्य का व्रत साध सको। उस भीड़ भाड़ में उन दोनों को फिर ब्रम्हचर्य का व्रत दिलवा दिया। उनका विवाह भी करवा दिया गया। उनको ब्रम्हचर्य का व्रत भी दिलवा दिया गया। फिर कहा दोनों पास रहो, एक दूसरे से प्रेम करो, प्रेम में शरीर तो आता ही नहीं, प्रेम तो आत्मिक चीज है। इस तरह की बातें निपट गँवारियां हैं। भोजन शारीरिक है सिर्फ आत्मिक नहीं, सन्यासी भी शारीरिक भोजन करने को तैयार है क्योंकि जानता है कि आत्मिक भोजन करेगा तो मरेगा और कुछ भी नहीं हो सकता। पानी पीता है तो शारीरिक पीता है, मकान में रहता है तो शारीरिक मकान में रहता है। कपड़े पहनता है तो शारीरिक कपड़ा पहनता है। ठंड और सर्दी और गर्मी और बीमारी उसे पकड़ती है तो शरीर की रक्षा करता है। लेकिन प्रेम के संबंध में वह कहता है कि वह तो आत्मिक बात है। इसका शरीर से कोई संबंध नहीं।

उन दोनों को फिर कसम दिलवा दी सन्यासी ने। यह बात नहीं कि वे दोनों मानते हैं कि ब्रम्हचर्य कोई बहुत महान बात है। बड़ी मुश्किल हो गई है। जब विवाह नहीं हुआ था तबभी एक बात थी। लेकिन अब पागल होने का पूरा इंतजाम कर दिया गया है। उस लड़की ने मुझे कहा कि दो साल हो गये हैं और हम पागल हुए जा रहे हैं। बागड़ लगाके, बीच की दीवार में ताला लगाके अब सोते हैं कि कहीं ब्रम्हचर्य न टूट जाये, कहीं प्रेम के किसी क्षण में शरीर बीच में न आ जाये। पति पागल हुआ जा रहा

है, मै पागल हुई जा रही हूं। नींद समाप्त हो गयी है, रात सो नहीं सकते। बस एक ही ख्याल है, अपने को बचाना है नहीं तो नरक जाना है। तो मैं क्या करूँ? मैंने कहा यही है ना, किसी सन्यासी ने तुझे ब्रम्हचर्य की कसम दिलवायी इसलिए तू ऐसी है। और मैं एक सन्यासी तुझे ब्रम्हचर्य से छुड़वा देता हूं, तू मुक्त हो जा। उसने कहा कि आप तो छुड़वा देंगे पर मेरे भीतर भी पाश्चाताप है कि गलत हो रहा है। बाहर के नियमों से तो किसी को छुड़वाया जा सकता है लेकिन समाज बहुत चालाक है। जिसको हम संस्कृति कहते हैं उससे ज्यादा cunning structure कोई भी नहीं है। उनसे ज्यादा चालाक और कोई व्यवस्था नहीं है। उसने अपने भीतर भी संस्कार खड़े कर दिये हैं जो आपके ही खिलाफ किये चले जा रहे हैं। अगर वे दोनों पागल न हो जायें तो और क्या होने की सुविधा है। वे पागल होंगे।

मनुष्य को जो भी सिखाया गया है वह पागल करने वाला है। जिन्हें हम बहुत बड़ा धर्म कहते हैं बड़े शुभ संस्कार कहते हैं वे सभी मनुष्य को पागल कर रहे हैं। और हमारे श्रेष्ठतम लोगों का हाथ है मनुष्य को बीमार करने में जिनको हम महात्मा कहते हैं, जिनको हम गुरू कहते हैं वे हमें पागल करने में साथी और सहयोगी बने हैं। अगर हम मनुष्य की पूरी व्यवस्था आज तक की देखें तो एक बात पक्की है कि मनुष्य जैसा है उसे हमने स्वीकार नहीं किया है। हम मनुष्य पर कुछ थोपते हैं कि तुझे ऐसा होना चाहिए। और जहाँ भी होना चाहिए। थोपा जायेवहाँ रुग्णता के प्रवेश की पूरी संभावना है। मनुष्य जैसा है वैसास्वीकृत क्यों नहीं है। मनुष्य जैसा है उसे वैसा होने में एतराज क्या है? गुलाब के पास हम जाते तो कहते हैं फूल ठीक, इसमें काँटे नहीं होना चाहिए। तो हम कांटों को छीलकर बाहर निकालते हैं। तो कांटे ही नहीं छिलेंगे, ध्यान रहे गुलाब का फूल भी मुरझा जायेगा क्योंकि कांटे और फूल कहीं गहरी व्यवस्था में एक साथ हैं। और कांटे गुलाब के दुश्मन नहीं हैं उसकी सुरक्षा ही हैं। और पौधे का जहाँ तक संबंध है उसे कांटों से उतना ही 'प्रेम' है जितना अपने फूलों से। लेकिन हम चाह सकते हैं क्योंकि हमारी चाह (neurotic) न्यूरोटिक है कि हम कांटो को अलग कर दें, हम सिर्फ फूलों को बचा लें। हम चाह सकते हैं किसी पौधे में जड़ों की क्या आवश्यकता है जो नीचे पड़ी रहती हैं, गंदी, आड़ा टेढ़ा, तिरछी, asthetic तो बिलकुल भी नहीं। सौन्दर्य का कोई बोध जड़ों को तो होता ही नहीं, सौन्दर्य तो फूलों में होता है। तो हम चाह सकते हैं कि जड़ों को तो अलग कर दें क्योंकि जड़ें निम्न हैं, नीचे हैं। और जो नीचे है वह निम्न है। valuation में हम उसे नीचे रखते हैं।

अभी मैं एक जगह था। एक सन्यासी ने मुझे कहा कि शरीर निम्न है, आत्मा उच्च है क्योंकि आत्मा ऊपर है, शरीर नीचे है। परमात्मा उच्च है क्योंकि परमात्मा ऊपर है। मोक्ष ऊँचा है क्योंकि मोक्ष ऊपर है पृथ्वी नीचे है क्योंकि नीचे है। उस सन्यासी ने मुझे यह भी कहा है कि शरीर में नीचे का हिस्सा निम्न है क्योंकि वह निम्न है। ऊपर हिस्सा जो है वह उच्च है। शरीर को भी दो खंडों में काटा है उसने। जो नीचे है वह निम्न है, जो ऊपर है वह उच्च है। नीचे होना एक भौगोलिक एक स्थानिक बात हो सकती है। वह भी हमारी कल्पना की ही बात है क्योंकि कुछ ऊँचा कुछ नीचा नहीं। मूल्यांकन (valuation) उसमें जुड़ जाता है कि कुछ नीचे है कुछ ऊँचे है। जड़ें नीचे हैं तो निम्न हो गईं, तो उन्हें काट दो, उन्हें अलग कर दो, मिटा दो। लेकिन ध्यान रहे जड़ें कट जायें चाहे वे कितनी ही कुरुप क्यों न हों, उन कुरूप जड़ों पर ही फूलों के सारे सौन्दर्य की संभावना है क्योंकि फूलों में जो रस आता है वह इन्हीं जड़ों से आता है। अगर जड़ें काट दी तो फूल भी नष्ट हो जाने वाले हैं। और जब फूल नष्ट हो जायें पौधा पागल होने लगेगा क्योंकि जड़ें काट दोगे तो पौधा पागल होगा ही। मजा तो यह है कि एक दफे फूल काटने से पौधे का कुछ भी नहीं बिगड़ता लेकिन जड़ें काटने से सब कुछ बिगड़ जाता है। जीवन में जिसे हम श्रेष्ठ कहते हैं वह न हो तो भी आदमी जी सकता है लेकिन जीवन में जिसे हम निकृष्ट कहते हैं यदि उसे हम काट दें तो आदमी का जीना

असंभव है। जीसस का कथन है Man can not live by bread alone आदमी अकेली रोटी से नहीं जी सकता। बहुत अच्छा वचन है। लेकिन उचित होगा यदि उसे पूरा कर दिया जाय। ऐसा तो हो भी सकता है कि आदमी अकेले रोटी से जी जाये लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं हो सकता कि आदमी बिना रोटी के जी सकता है। जिसे हम निम्न कहते हैं उसके बिना जीना बिल्कुल असंभव है क्योंकि वह बुनियाद है। असल में वह नीचे इसलिए है क्योंकि वह बुनियाद है। एक मंदिर का शिखर नहीं हो सकता यदि नींव के पत्थर न हों तो। लेकिन नींव के पत्थर हो सकते हैं शिखर की कोई अनिवार्यता नहीं। एक मंदिर की नींव भरी हो सकती है और शिखर न उठाया गया हो लेकिन एक मंदिर का शिखर नहीं हो सकता अगर नींव न भरी गई हो।

जिसे हम ऊँचा कहते हैं वह नीचे पर निर्भर है अपने अस्तित्व के लिए। लेकिन अब तक के मनुष्य समाज ने नीचे और उँचे में एक विरोध है ऐसा समझा है। और उसने एक अनिवार्य विरोध का जन्म ले लिया है। वह कहता है कि प्रेम तो उँचा है सैक्स नीचा है। इसलिए चाहो सैक्स को काट दो और प्रेम को बचा लो। पुरानी संस्कृति, पुराने धर्म, पुराने गुरु, हमसे कहते हैं कि प्रेम को बचा लो सैक्स को काट डालो। और जब सैक्स कट जायेगा तभी प्रेम शुद्ध और सच्चा होगा। अन्यथा प्रेम झूठा है पाप है अपराध है। यह शिक्षा आदमी को पागल कर देगी या पाखण्डी कर देगी। जो होशियार होंगे वे इस शिक्षा को ऊपर से मानेगें और भीतर इंकार करेंगे वे कभी भी पागल नहीं होंगे। पाखण्डी कभी भी पागल नहीं होंगे। लेकिन सच्चे और ईमानदार लोग पागल होना शुरू हो जायेंगे क्योंकि वे शिक्षा को पूरा कर लेगें। जो पाखण्डी है जो Hypocrate है वे यह मानते हैं कि ये बात कहने की है और करने की कुछ और। घर का दरवाजा जिस पर हम मेहमानों का स्वागत करते हैं वह और है। और घर के बाहर और भीतर आने के असली दरवाजे और हैं जो हमने पीछे के तरफ लगा रखे हैं। पुरानी सारी व्यवस्था आदमी को या तो पागल करेगी या पाखण्डी करेगी। पर पाखण्डी हो जाना भी एक तरह का पागलपन है। कोई भी निरन्तर दो चेहरों में जीना है जिसे संभालना मुश्किल है। उनका भी तनाव पड़ता है। उनसे भी मनुष्य के मन पर बोझ पड़ता है। लेकिन सीधा सीधा आदमी जैसा है वैसा हमें स्वीकार नहीं है।

इसलिए मनोचिकित्सा तभी हम समझ सकेंगे जब मनोरोग के मूल निदान को समझ लें। यह किसी एक व्यक्ति का सवाल नहीं है। इसलिए आज जो मनोचिकित्सा कर रही है एक एक बीमार व्यक्ति को ठीक करने की चेष्टा है वह बहुत दूर ले जाने वाली नहीं, बहुत लम्बी है बहुत मंहगी, कहीं ले जाती नहीं। एक मनोचिकित्सा को पहले तो Afford करना बहुत मंहगी बात है। सभी आदमी के बस की बात नहीं। सच तो यह है कि हिन्दुस्तान भर में कुछ ही लोगों के बस की बात है। सिर्फ अमेरिका में ही मनोचिकित्सा चल सकती है। एक आदमी को तीन साल चार साल पांच साल चिकित्सा चलानी पड़ेगी। मेरा अपना ख्याल है कि पांच साल चिकित्सा चलाने से कोई फायदा न होगा पांच साल में सिर्फ वह ऊब जाता है निराश हो जाता है फिर जिन्दगी जैसी है वैसी स्वीकार कर लेता और लड़ाई छोड़ देता है। और ऐसा कुछ नहीं है कि वह ठीक हो गया। वह ठीक हो भी नहीं सकता इतना हो हो सकता है कि वह Normal हो जाये। मनोचिकित्सा आदमी को स्वस्थ करने के लिए अभी उत्सुक नहीं है बस Normal सामान्य बनाने को उत्सुक है। उसका ख्याल है बस आदमी सामान्य हो जाये। सामान्य आदमी स्वस्थ आदमी है यह बात ही अजीब है। पहले तो सामान्य जिसे कहते हैं वह स्वस्थ नहीं है हां इतना ही हो सकता है कि हम सब पागलों के अनकूल हो जायें उसे वापिस करीब ले आयें उसे लौटाकर। अगर मैं ठीक से कहूं तो इसका मतलब यह हुआ कि Individual Neurosis जो है, व्यक्तिगत पागलपन जो है उसे हटाकर हम Social Neurosis के करीब ले आयें सामाजिक पागलपन के करीब ले आयें तो वह Normal हो गया। पूरा गांव एक तरह पागल है। अगर मैं अपने ढंग से पागल होता हूं तो पूरे गांव में पागल मालूम होता हूं और अगर गांव के ढंग से पागल होता हूं तो फिर Normal हो जाता हूं।

एक आदमी बाल उखाड़ता है अपने सिर के तो हम उसे पागल कहेंगे। अगर वह जैन साधू हो जाय और फिर बाल उखाड़े तो हम उसे त्यागी कहेंगे। वह अपने को एक सामूहिक पागलपन के निकट ले आया है अब वह सामान्य हो गया है। एक आदमी नंगा खड़ा हो जाय तो हम उसे विक्षिप्त कहेंगे और अगर वह नागा साधुओं की जमात में खड़ा हो जाये तो वह Normal होगा विक्षिप्त नहीं। आप अभी सड़क पर खड़े होकर गालियां बकने लगें तो आप पागल होंगे। पर यदि होली के दिन बकने लगें तो आप पागल नहीं क्योंकि होली के दिन सामूहिक पागलपन है। उसमें आप निकट आ गये हैं आप व्यक्तिगत पागलपन नहीं कर रहे हैं। इसलिए होली के दिन लोग कहते हैं कि होली का दिन है। इसमें बुरा मानने का कोई सवाल नहीं है।

सारी दुनिया में एक जगह जो पागलपन की बात होगी वह दूसरी जगह न भी हो। यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या उस पागलपन को उस समाज ने सामाजिक स्वीकृति दी है। अगर सामाजिक स्वीकृति दी है तो वह व्यक्ति सामान्य समझा जायेगा, पागल नहीं समझा जायगा। लेकिन अगर समाजिक स्वीकृति नहीं है तो वह पागल है। तो क्या पागल और गैर पागल का इतना ही मतलब है कि जिस पागलपन को सामाजिक स्वीकृति है वह पागलपन नहीं है। तब तो कोई मतलब ही नहीं हुआ। अभी मनोचिकित्सा एक ही काम कर रही है कि जो लोग व्यक्तिगत रूप से पागल हैं उन्हें वह लौटाकर सामाजिक पागलपन में सम्मिलित करा देती है। normal का इतना ही मतलब है। आदमी अब normal हो गया, मतलब यह है कि उसके जो ढंग हैं स्वीकृत ढग है पागल होने का, अस्वीकृत ढ़ंग नहीं। original मौलिक ढंग नहीं होना चाहिए पागलपन में भी। समाज कहता है कि कोई मौलिक ढंग नहीं होना चाहिए। पागल भी होना हो तो कोई रुढ़िगत, स्वीकृत ढंग से ही पागल होना। सामूहिक पागलपन के निकट ले आना स्वास्थ हो सकता है ? नहीं, लेकिन मनोचिकित्सा की अगर गहरी खोज हम करें तो हमें पता चलेगा कि पूरा समाज ही पागल है। इसलिए एक एक व्यक्ति को स्वस्थ करने की व्यवस्था अंततः असफल होने को आबद्ध है वह सफल नहीं हो सकती। उसकी सफलता इतनी ही हो सकती है ज्यादा नहीं। अगर हम रोग को सामूहिक समझें तो मनोचिकित्सा कुछ कर सकती है।

मेरी दृष्टि में मनोचिकित्सा चिकित्सा का एक उपाय नहीं, जीवन में आमूल क्रांति का आधार है। और जिस दिन हम फ्रायड को सिर्फ रुग्ण लोगों को ठीक करने वाला चिकित्सक नहीं बल्कि मनुष्य की सामान्य व्यवस्था को आमूल रुपान्तरित करने वाला क्रांतिकारी समझेंगे उसी दिन मनोचिकित्सा को हम ठीक समझने में सफल हो सकते हैं। लेकिन उतनी हमारी तैयारी नहीं है। क्योंकि उस तैयारी में बड़ा उपद्रव हो जाने वाला है। मेरी दृष्टि में फ्रायड से ज्यादा क्रांतिकारी व्यक्ति पृथ्वी पर कभी पैदा ही नहीं हुआ है। अगर हम उसकी अन्तरदृष्टि को पूरा का पूरा फैलायें तो समाज का सारा ढांचा बदल देना पड़ेगा। अगर उसकी अंतर्दृष्टि को हम ठीक ठीक समझें तो समझना पड़ेगा कि आज तक के दस हजार साल के ज्ञात इतिहास में जो हमने किया है वह है मनुष्य को व्यवस्थित ढंग से पागल करने की चेष्टा, और कुछ भी नहीं। धर्मों के नाम पर, संस्कृतियों के नाम पर, सभ्याताओं के नाम पर हम आदमियों को रुग्ण करने का उपाय कर रहे हैं। हम, एक बात तय है कि आदमी जैसा है उसे स्वीकार करने को राजी नहीं हैं और यही बिन्दु उसे बीमारी की तरफ ले जाने वाला बिन्दु बन गया है। हम राजी नहीं है कि आदमी जैसा है वैसा हो। हम कहते हैं उसे ऐसा होना चाहिए। और जो होना चाहिए का ढांचा है उसे हम तय करते हैं और उस ढांचे में आदमी को बिठालने की कोशिश करते हैं। यह बात ऐसी हो है जैसे दरजी पहले कपड़ा बना देता हो और फिर किसी आदमी को पहनने के लिए बाध्य होना पड़ता हो। फिर अगर कपड़े छोटे पड़ते हों तो आदमी को हाथ पैर सिकोड़ने पड़ते हों और अगर बड़े पड़ते हों तो हाथ पैर खींचकर बड़े करने की कोशिश करनी पड़ती हो। संस्कृतियाँ कपड़े पहले निर्मित कर देती हैं फिर एक एक

बच्चे को पहनाने की कोशिश करती है। और मजा यह है कि जिसे हम av rage औसत कहते हैं वह बिल्कुल झूठी बात है, average होता ही नहीं। जैसे जबलपुर भर के सभी लोगों की ऊँचाई नापी जाये और average निकाली जाये और average कपड़े बना लिये जायें तो वे कपड़े एक भी आदमी को पांच लाख में मौजू नहीं होने वाले हैं। क्योंकि average आदमी होते ही नहीं, वह बिल्कुल झूठी इकाई है। लेकिन सभी संस्कृतियां, सभी राज्य, सभी व्यवस्थायें average औसत पर चलती हैं। वे कहती हैं कि average आदमी का पता लगा लो और उसके हिसाब से इंतजाम कर दो, उसके हिसाब से लागू हो जायेगा। और average औसत आदमी एकदम ही myth मिथ है एकदम है ही नहीं। औसत आदमी कहीं होता ही नहीं। हर आदमी अपने ढंग का आदमी है उस ढंग का दूसरा आदमी है ही नहीं। इसलिए कोई संस्कृति किसी भी ढंग के कपड़े बनाये वह पागल करेगी ही। यह सवाल ही नहीं है कि भारतीय ढंग की संस्कृति ही पागल करेगी और जापानी ढंग की नहीं करेगी। और हिन्दू ढंग की पागल करेगी और मुसलमान ढंग की नहीं करेगी।

सभी संस्कृतियों का मूल आधार यही है कि कपड़े तय करो आने वाले बच्चों के लिए। और बच्चों को बदलो यदि कपड़े ठीक न आते हों। कपड़े नहीं बदले जा सकते। बच्चों को बदलने की कोशिश करो। उनके हाथ पैर छोटे करो या लम्बे करो। लेकिन कपड़े तो सुनिश्चित हैं वे ऋषि, महर्षियों ने, वे ज्ञानियों ने, ज्ञाताओं ने, द्रष्टाओं ने निश्चित किये हैं वे बदले नहीं जा सकते। एक सामान्य व्यक्ति के साथ ऋषिओं, महर्षिओं और महत्माओं की लंबी लंबी कतार हैं। ये इतना अन्याय कर रही हैं जिसका हिसाब लगाना कठिन है और वे सब आदमियों को एक एक करके पागल करने में लगे हैं। एक एक आदमी अपने ढंग का आदमी है और किसी को यह हक नहीं है कि उस पर थोपो कि उसे ऐसा होना चाहिए। और जब तक यह बात हम स्वीकार न कर लेवें तब तक हम मनो रोग पैदा करते ही रहेंगे। बल्कि आश्चर्य की बात यह है कि जितने जोर से हम यह कहेंगे कि किसी को ऐसा होना चाहिए तो उसमें जो सबसे कम बुद्धि का वर्ग होगा वह राजी हो जायेगा। और जो बुद्धिमान वर्ग है वह पागल दिखायी पड़ने लगेगा। क्योंकि जितना बुद्धिमान होगा उतना व्यक्ति होना चाहेगा। और जितना बुद्धिहीन होगा उतना इकाई होना चाहेगा। इसलिए यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना है कि जिन्हें हम पागल कहते हैं वे सारे लोगों में सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं। हमारे बीच का जो निम्नतम वर्ग है वह पागल नहीं होता। इसलिए ध्यान रहे जानवर पागल नहीं होते कभी भी। कोई पशु पागल नहीं होता क्योंकि पशु के तल पर पागल होने लायक तनाव भी नहीं डाला जा सकता। उसे डालने के लिए उतना संवेदनशील चित्त चाहिए। वह पागल नहीं होता। गांव, देहात के लोग कम पागल होते हैं। फिर जैसे जैसे सभ्यता विकसित होती है पागल लोग बढ़ने लगते हैं। उसके बढ़ने के दोहरे कारण हैं। तनाव भी पड़ता है और मनुष्य बुद्धि भी विकसित होती है जो तनाव को अनुभव करना शुरू कर देती है। अगर बाहर आग लग जावे तो इन कमरे की कुर्सियाँ, टेबिलें और किताबें पागल नहीं होंगी। हम पागल हो जायेंगे। क्योंकि हमें अनुभव होगा कि आग लग गयी है और कुछ करना है। कुर्सियां अपनी जगह पर बैठी रहेंगी उन्हें अनुभव भी नहीं होगा कि कुछ करना है। जब आग आयेगी तो वे जल जायेंगी लेकिन कुछ करने का सवाल उनको नहीं उठेगा।

जब समाज किसी ढांचे को जोर से थोपती है तो जो व्यक्ति जितने कम बुद्धि के होते हैं, जिनका I. Q. (बुद्धि लब्धि) जितना कम है वे उतने जल्दी उसमें राजी हो जाते हैं क्योंकि उनके लिए यही सुविधापूर्ण है। बुद्धि अगर कम है तो दूसरे का ढांचा स्वीकार कर लेना सरलतम, Convenient है क्योंकि अपना ढांचा खोजने के लिये भी बुद्धि की जरूरत है। वे राजी हो जायेंगे, वे तृप्त हो जायेंगे, वे भीड़ के साथ चलने लगेंगे। लेकिन बुद्धि ज्यादा हो, जीने का ढंग और रस हो और जीवन को अपने ढंग से खोजने की आकांक्षा हो, संवेदना हो तो

व्यक्ति कठिनाई में पड़ जायेगा। पिछले पचास वर्षों में पश्चिम का शायद ही कोई ऐसा विचारक है जो पागल नहीं हुआ हो पागलखाने नही गया हो। बड़ा कवि शायद ही हो जो पागल खाने नहीं गया हो। यह थोड़ा घबड़ाने वाला है, बात क्या है ? वे हमारे बीच भीड़ के साथ नहीं चल पाते। कोई भी नहीं चल पायेगा यदि बुद्धिमानी विकसित होगी। प्रत्येक व्यक्ति अपने जैसा होना चाहेगा। वह किसी type किसी ढांचे किसी pattern में ढलने को राजी नहीं होगा। जितनी मनुष्य की बुद्धि बढ़ती जा रही है उतनी कठिनाई होती जा रही है। ढाँचा दिक्कत दे रहा है। और मनुष्य अपने जैसा होना चाहता है। और ढांचा कहता है कि अपने जैसा भर होने की आज्ञा नहीं है।

हम छोटे छोटे बच्चों को पागल कर रहे हैं कि गांधी जैसा बनो, विवेकानन्द बनो। किसी बच्चे ने कोई कसूर किया है वह पैदा होकर गांधी जैसा क्यों बने ? वह विवेकानन्द जैसा क्यों बनें ? वह मोहम्मद या क्राइस्ट जैसा क्यों बने। वह राम और कृष्ण जैसा क्यों बने। राम और कृष्ण ने कोई ठेका लिया हुआ है कि सारे लोग उन जैसे बनें। लेकिन हम बच्चों को सिखा रहे हैं कि किसी और जैसे बनो। अपने जैसे कभी मत जीना। यही भूल भर मत करना। अब और हम पागल होने का रास्ता खोज रहे हैं। अगर तीस बच्चों को यह सब सिखाया जा रहा है तो उनमें जो सबसे कम बुद्धि के लोग हैं वे राजी हो जायेंगे। वे राम जैसे बनने को राजी हो जायेंगे हालांकि राम जैसे नहीं बन पायेंगे। और राम राम बने ही इसलिए क्योंकि वह और किसी जैसे बनने को राजी नहीं हुए थे। और ये राम तो नहीं बन पायेंगे पर रामलीला के राम जरूर बन सकते हैं। और तब या तो वे पाखण्डी हो जायेंगे या पागल हो जायेंगे। संस्कृति दो ही विकल्प छोड़ती है या तो पाखण्डी हो जाओ, खुद को धोखा दो और दूसरों को धोखा दो या फिर जीना हो authentically तो पागल हो जाओ इसलिए हमारे समाज में धोखा देने वाला सबसे ज्यादा सुविधा में हैं। और प्रमाणिक रूप से जीने वाला सबसे ज्यादा मुश्किल में पड़ जाता है। उसके तनाव मंहगे हो जाते हैं। लेकिन क्या यह उचित है कि संस्कृति दो ही तरह के विकल्प दे पागल या पाखण्डी। या तो Hypocrate या कि neurotic दो ही विकल्प देती है यह समाज। क्या यही समाज व्यवस्था हुई ? और मेरी दृष्टि में दोनों ही पागल हैं क्योंकि दोनों ही ठीक से नहीं जी पाते। पागल टूट जाता है ठीक से जीने की कोशिश में और पाखंडी ठीक से जीने की कोशिश में झूठा हो जाता है। दोनों ही प्रमाणिक रूप से नहीं जी पाते।

मनोचिकित्सा बहुत गहरे में समाजक्रांति है। उसे चिकित्सा शब्द कहना ही नहीं चाहिए। अच्छा हो उसे हम कहें मनोक्रांति। Psychorevolution बजाय Psychotherapy कहने के। हम कहें मनोक्रांति। मनुष्य का मन स्वीकृत नहीं हुआ अभी तक। मनोचिकित्सा की मनोक्रांति का पहला कदम और पहला आधार तब यह होगा कि मनुष्य जैसा है हमें स्वीकार है। और किसी भी व्यक्ति को यह हक नहीं है कि उसे कुछ और होने के लिए दबाव डाले, उसे परेशान करे, उसे किसी ढांचे में बांधे। इसका मतलब यह होता है कि मनुष्य की संस्कृति अब तक जो आदर्श मानकर चलती थी वह अब आने वाली मनुष्य की संस्कृति उस आदर्श को मानकर नहीं चलेगी। क्योंकि आदर्श का एक ढांचा बना था। इसका यह मतलब हुआ कि आदर्श हमेशा भविष्य में आता है जिसमें मुझे अपने को ढालना है। मनोचिकित्सा की क्रांति यही कहेगी कि मुझे किसी को देखकर नहीं ढालना है। मैं जो हो सकता हूं वह मुझे होना है। अर्थात मुझे भीतर की तरफ देखना है कि मैं क्या हो सकता हूं। मुझे आगे की तरफ नहीं देखना है कि मुझे क्या होना है। मुझे भविष्य की तरफ नहीं देखना है, मुझे मेरी तरफ देखना है कि मैं क्या हो सकता हूं। और मेरे सामने कोई ढांचा नहीं है, कोई नेता नहीं है, कोई आदर्श नहीं है। हो भी नहीं सकता क्योंकि मैं पहली दफे पृथ्वी पर पैदा हुआ हूं। न मैं पहले कभी पैदा हुआ था और शायद दुबारा भी कभी पैदा नहीं हो सकता हूं। जैसा मैं हूं पहली दफे ही हुआ हूं। जैसे आप हैं पहली दफे हुए हैं। छोटे से छोटा आदमी भी अपने ढंग से अनूठा है। और यही है व्यक्ति के पास आत्मा होने

का अर्थ। आत्मा होने का मेरे लिए एक ही अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। उसके पास एक self है, उसके पास अपनी एक आत्मा है। मगर अनूठा नहीं है तो उसके पास कोई आत्मा नहीं रह जाती। इस आत्मा को हमने फैलने, फूलने, विकसित होने का मौका नहीं दिया। इसलिए आदमी न्यूरोटिक neurotic हो गया है। हमने आत्मा को बढ़ने का, फैलने का उपाय नहीं दिया है, सुविधा नहीं दी है इसलिए आदमी पागल हो गया है। आदमी के स्वभाव को सहज गति नहीं मिली। इसलिए आदमी पागल हो गया है।

क्या आदमी के स्वभाव को सहजगति मिल सकती है? तब हमें सारी जीवन चिन्तना के जो भी आधार हैं उन्हें बदल देना पड़ेंगे, सारी धारणायें बदल देना पड़ेंगी। तब किसी आदर्श के समक्ष मनुष्य को जिलाने की कोशिश गलत है। तब एक ही हो सकता है कि आदमी कैसे ठीक से रसपूर्ण ढंग से जीये। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि किस ढांचे को मानकर जिये। महत्वपूर्ण यह है कि कितने रसपूर्ण हम जियें। यह सवाल नहीं है कि कैसा खाना खायें और कैसा खाना न खायें। सवाल यह है कि खाने को किस भांति खायें कि अधिकतम स्वाद ले सकें। सवाल यह नहीं है कि वह कपड़े पहिने या न पहने। सवाल यह है कि वह चाहे पहिने या चाहे न पहिने। वह जिस भांति भी जिये उससे अधिकतम रस ले और उसके व्यक्तित्व को अधिकतम खिलने और फूलने का अधिकतम मौका मिल सके। और निश्चित ही कमल कमल होगा, गुलाब गुलाब होगा, चमेली चमेली होगी, चम्पा चम्पा होगी। चम्पा को गुलाब बनाने की कोशिश में चम्पा पागल हो जायेगी। वे तो हमारी बात मानते नहीं। नहीं तो बगीचे में जाकर हम उनको समझाते कि चम्पा को चमेली होना चाहिए, चमेली को गुलाब होना चाहिए, गुलाब को कमल होना चाहिए। वे तो फिकर नहीं करते किसी उपदेशक की। आदमी को भी धीरे धीरे उपदेशक की फिकर छोड़नी चाहिए। यह बनने की फिकर छोड़नी चाहिए। यह उपदेशक की बात खतरनाक सिद्ध हुई है। फूल भी सुन लें तो वे भी पागल हो जायेंगे। सोचें कभी यदि चमेली चम्पा बनने की कोशिश में लग जाये तो एक बात पक्की है कि वह चम्पा चमेली तो बन नहीं पायेगी लेकिन चम्पा बनने की कोशिश में चमेली भी नहीं बन पायेगी। वह जो हो सकती थी वह भी न हो पायेगी। क्योंकि उसकी शक्ति कुछ और ही होने में लग जायेगी।

एक बात आदर्श से मनुष्य मुक्त हो Psychotherapy, मनोचिकित्सा की जो गहरी से गहरी अन्तर्दृष्टि है वह है मनुष्य को आदर्श से, भविष्य से मुक्त करना, वर्तमान में जीने की व्यवस्था जुटाना। जब तक हम आदर्श को सामने रखकर जियेंगे तब तक हम अपराधी ही रहेंगे। हम अपराध Guilt से मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि आदर्श और हमारे बीच सदा फासला रहेगा। आदर्श है भगवान होने का और हम आदमी हैं। हमें आदमी की तरह जीना पड़ेगा और आदर्श से आदमी को ऊपर उठ जाना पड़ेगा। नहीं तो वह निरंतर Condemn करता रहेगा। और उसका इशारा हमेशा छाती पर बना रहेगा। कैसे पापी हो, अधार्मिक हो, नरक जा रहे हो। जो हम जियेंगे वह Condemned होगा जो हम नहीं जी सकते वह हमारी अपेक्षा होगी। इन दोनों के बीच मनुष्य कैसे स्वस्थ रह सकता है।

मनुष्य को छोड़कर सारा जगत स्वस्थ है। क्योंकि मनुष्य को छोड़कर संस्कृत होने की चेष्टा किसी की भी नहीं। लेकिन क्या इसका मतलब संस्कृति छोड़नी चाहिए? क्या इसका मतलब है कि मनुष्य पशुओं जैसा हो जाये? नहीं, मनुष्य पशुओं जैसा हो भी नहीं सकता। मनुष्य मनुष्य जैसा ही हो सकता है। लेकिन हमने अब तक जो संस्कृति पैदा की है वह एक ढांचे की है। वह एक स्वतंत्रता की नहीं। ढाँचे की संस्कृति की जगह स्वतंत्रता की संस्कृति का जन्म होना चाहिए। जहां प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होने की आजादी है। कोई निन्दा नहीं है।

दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं कि अब तक मन पर थोपी गई सारी बातें किसी न किसी अर्थ में आदमी से सुखी होने की अपेक्षा दुखी होने की अपेक्षा

ज्यादा करती रहीं है । हम यही अपेक्षा करते रहे हैं कि जो आदमी जितना दुख झेले वह, उतना महान है। इसलिए त्यागी को, तपस्वी को हम आदर देते हैं। हम आदर देते हैं उस आदमी को जो दुख झेले। ऐसे ही दुख ज्यादा है लेकिन दुख को इतना आदर दिया है कि लोग Voluntarily अपनी स्वेच्छा से ही दुख खोजने निकल पड़ते हैं। और जब कोई आदमी अपने को दुख देने में काफी सक्षम हो जाता है तो हम उसका बड़ा आदर करते हैं पूजा करते हैं । जिन लोगों को हमने आदर दिया है वे वही लोग हैं जिनने अपने को दुख देने के उपाय किये हैं। कहीं न कहीं गहरे में सुख स्वीकार नहीं हो सका। दुख स्वीकृत है, या तो Masochiast (स्वपीड़क) हैं या हम Sadist (परपीड़क) या तो हम दूसरों को दुख देना चाहते हैं या खुद को दुख देना चाहते हैं। अगर ये दोनों ही बातें चलती हैं तो आदमी कभी भी मनोस्वस्थ नहीं हो सकता है। मन की दृष्टि से अस्वस्थ ही रहेगा और मजा यह है, ये Sadist जो दूसरों को दुख देना चाहते हैं—परपीड़क Masochiast जो अपने को—स्वपीड़क, इन दोनों के बीच पेन्डुलम घूमता रहता है। अगर एक आदमी किसी तरह दूसरों को दुख देने से रोका जा सके तो वह दूसरा काम जो शुरू करेगा वह अपने को दुख देना शुरू करेगा। अगर अपने को दुख देने से रोका जा सके तो वह दूसरों को दुख देना शुरू कर देगा। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हो सका कि आदमी सुख में जिये और सुख का सम्मान करे। न होने का कुछ कारण दिखायी पड़ता है। सुख का सम्मान ही नहीं है। आप किसी व्यक्ति को सुखी देखकर प्रफुल्लित और आनन्दित नहीं होते। बल्कि दुखी देखकर जरूर प्रफुल्लित आनन्दित हो जाते हैं। यदि किसी के घर में कोई मरता है तो ऐसे तो लोग आकर बड़ी सहानुभूति प्रगट करते हैं। लेकिन अगर उनकी आंखों में देखें, उनके ओठों को देखें, उनके चेहरे पर देखें तो कोई भीतरी रस बहता हुआ मालूम पड़ता है। आज बड़ा मौका मिला है किसी को दुखी देखकर सहानुभूति दिखाने की स्थिति में हैं। और अगर मेरे घर कोई मर गया हो और आप सहानुभूति दिखाने आये हों और मैं कहूं कि बेकार मेहनत कर रहे हैं सब ठीक है जिसको मरना था वह मर गया तो आप थोड़ा उदास लौटेंगे। क्योंकि आप जो करने आये थे वह नहीं हो सका। आप मुझे गाली देते हुए लौटेंगे, कहेंगे कि यह आदमी गलत है। आप गालियाँ इसलिए दे रहे हैं क्योंकि आप सहानुभूति का पात्र खोजने आये थे जो मैं सिद्ध नहीं हुआ। असल में सहानुभूति एक रस है जिसमें सहानुभूति देनेवाला ऊपर हो जाता है और सहानुभूति लेने वाला नीचे हो जाता है। दुख में हम रस ले भी पायें लेकिन सुख में रस नहीं ले पाते। और जो लोग किसी के सुख में रस नहीं ले पाते वे लोग रुग्ण हैं। और जो लोग किसी के दुख में रस लेते हैं वे भी रुग्ण हैं।

रुग्ण चित्त सुख में रस नहीं ले पाता। इसलिए रुग्ण चित्त धीरे धीरे दुख में ही रस लेने की एक फिलासफी बनाता है। मेरी अपनी समझ यह है कि मनुष्य जाति को जिन लोगों ने दर्शन दिये हैं जो फिलासफीज दी हैं वे किसी न किसी अर्थ में रुग्ण थे। कुछ ऐसा दुर्भाग्य हुआ है कि जैसी हमने एक सुनी है कहानी ईसप की। जिसमें लोमड़ी निकलती है और दूर अंगूर लटके हुए देखती है उछलती है और अंगूर नहीं पाती। बहुत कोशिश करती है लेकिन छलांग छोटी पड़ जाती है और अंगूर दूर रह जाते हैं। तब पास की एक झाड़ी से खरगोश झांककर उससे पूंछता है कि क्या हुआ। खरगोश भी इसीलिए पूंछता है ताकि लोमड़ी को दिखा सके कि बस इतनी सी छलांग। लेकिन लोमड़ी अकड़ से चलने लगी है खरगोश को देखकर और उसने कहाकि अंगूर खट्टे थे, वे पाने योग्य ही न थे। मनुष्य जाति का बड़ा दुर्भाग्य है कि मनुष्य जाति के पैगम्बर, तीर्थंकर और अवतार करीब करीब उस वर्ग से आये हैं जिनके लिए अंगूर खट्टे सिद्ध हुए हैं। और वे सबके लिए अंगूर खट्टे हैं ऐसा सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न हो गये हैं। अगर वह लोमड़ी तीर्थंकर हो जाये, अवतार या पैगम्बर हो जाये तो बाकी सभी लोमड़ियों और जंगल के पशु-पक्षियों को समझायेगी कि जाना मत उस वृक्ष की तरफ क्योंकि अंगूर बिलकुल खट्टे हैं। क्योंकि दो खतरे हैं उसे। एक

खतरा तो यह है कि किसी की छलांग अंगूर तक पहुंच सकती है और तब अंगूर खट्टे हैं कहना गलत हो जायेगा और अपनी छलांग छोटी सिद्ध हो जायेगी।

मनुष्य को आज तक जहाँ से शिक्षायें मिली हैं वे सुखी और आनन्दित और शांत नहीं थे। वे रुग्ण और दुखी थे जो जीवन को स्पर्श नहीं कर पाये थे। जीवन का आनन्द जो नहीं छू पाये थे। और कई बार ऐसा होता है कि जब आप सुख में होते हैं तब चुप हो जाते हैं, मौन हो जाते हैं, अपने सुख का रस लेते हैं। लेकिन जब आप दुख में होते हैं तब आप बहुत मुखर हो जाते हैं। आप देखें दुखी आदमी चौबीस घंटे दुख की बातें करते हैं। चौबीस घंटे सुबह से शाम तक अपनी ही बात किये जाते हैं। मैंने सुना है जिस दिन जीसस को सूली लगी उस दिन जीसस को जिस गांव में सूली लगी उस गांव में एक आदमी का रात भर दांत दुखता रहा। रात में उसकी पत्नी ने कई बार उसे कहा कि सुनते हो, कल सुबह जीसस को सूली लग जायेगी यह तय है। क्योंकि उसकी पत्नी जगी हुई है उसने कहा कि बहुत तकलीफ है दांत में, बहुत तकलीफ है, करवटें बदल रहा हूं लेकिन तकलीफ नहीं मिटती। सुबह हो गई है लोग निकल रहे हैं। सूली पर जीसस ले जाये जा रहे हैं। सामने से जुलूस निकल रहा है जो भी आदमी आता है, कहता है सुना तुमने गरीब जीसस को सूली लग रही है। वह आदमी सुनता ही नहीं है वह कहता है कि मेरे दांत में बहुत दर्द हो रहा है। रात भर तकलीफ रही है, रात भर करवट बदली है। सुबह से शाम तक लोग उससे कहते हैं कि जीसस को सूली लग रही है। लेकिन जिसके दांत में दर्द हो रहा है उसको जीसस से क्या लेना देना वह अपने दांत की कहानी कहे चला जा रहा है। दुखी आदमी मुखर हो जाता है। सुखी आदमी चुप भी हो सकता है। दुखी आदमी चुप भी नहीं हो सकता। वह दुख की बातें बताने में भी रस लेने लगता है। इसलिए दुखी आदमी बड़ा प्रभावी सिद्ध हुआ है आज तक। उसने अपने दुख की काफी चर्चा की है। दुनिया को दुखी सिद्ध करने की चेष्टा की है। सब दुख है सारा जीवन दुख है यह समझाने का प्रयास किया है। सारी दुनियां में बहुत दुखी लोग भी हैं उन सारे लोगों को बात जँच भी गई है. समझ में भी आ गई है।

हमने अब तक जो संस्कृति खड़ी की है वह दुख के केन्द्र पर खड़ी है सुख के केन्द्र पर नहीं। इसलिए एक आदमी कांटों पर लेट जाये तो बिना उसके पैर छुए न निकल सकेंगे। हालांकि उस आदमी की चिकित्सा होनी चाहिए। पैर नहीं छूने चाहिए क्योंकि वह आदमी पागल है। क्योंकि सुख की आकांक्षा सहज आकांक्षा है, दुख की आकांक्षा रुग्ण है। अगर एक आदमी उपवास कर ले महीने भर का तो हम चर्चा से भर जायेंगे, सारे मुल्क में चर्चा होगी। हालांकि उपवास करने की आकांक्षा Masochiast है, खुद को तकलीफ देने की है। और हम उसमें रस लेंगे, हम बड़े आनन्दित होंगे, हम बड़े प्रसन्न होंगे। और सारे मुल्क में चर्चा होगी। और हमारी चर्चा उस अपने को दुख देने वाले आदमी को प्रोत्साहन देगी। और वह आदमी अपने को और दुख दिये जायेगा और दुख दिये जायेगा। उसको रोज रोज तकलीफ देने की नयी तकलीफ ईजाद करनी पड़ेगी। पुरानी तरकीबों से कब तक आदर लायेंगे, सम्मान लायेंगे। वह आदमी अपने को दुख दिये जायेगा और हम उसे आदर देते रहेंगे। ध्यान रखना जब हम किसी आदमी को आदर देते हैं तब किसी न किसी तरफ Condemnation शुरू हो जाता हैं। अगर हम कहते हैं गांधी जी महापुरुष हैं क्योंकि थर्ड क्लास में चलते हैं तो आप यदि सेकेन्ड क्लास में चल रहे तो Condemnation शुरू हो गया। और गाँधीजी से किसी ने पूछा कि आप थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं तो उन्होंने कहा चूँकि फोर्थ क्लास नहीं हैं इसलिए। फोर्थ क्लास नहीं है इसलिए वह थर्ड क्लास में चलते हैं। और अगर आपने कहा कि गाँधी बड़े महात्मा हैं क्योंकि थर्ड क्लास में चलते हैं तो आप बड़े पापी हो जायेंगे यदि फर्स्ट क्लास में चल रहे हैं। अकांक्षा तब यही होगी कि एक दिन हम भी थर्ड क्लास में चलें और दुख की अकांक्षा रुग्ण चित्त का लक्षण है। सहज चित्त सुख मांगता है। लेकिन सहज

चित्त को कभी स्वीकार नहीं किया है। और इसलिए जब दुख केन्द्र पर होगा तो सभी न्यूरोटिक हो जायेंगे, सभी पागल हो जायेंगे। वे जो दुख झेल रहे हैं वे न्यूरोटिक हो जायेंगे क्योंकि अपने मन का उनको दमन करना पड़ रहा है repression करना पड़ रहा है। मन तो निरंतर कहे जाता है सुख, सुख। मन तो निरंतर कहे जाता है सुख। किन्तु कितनी ही शिक्षा दो दुख देने को, मन तो कहे ही जाता है सुख, सुख। मन की गहरी से गहरी आवाज है जो कभी नहीं मिटती। और आदमी अपने को दबाये चला जाता है और वह आदमी रुग्ण हो जाता है। जो सम्मान दे रहे हैं वे भी रुग्ण हो जाते हैं क्योंकि उनका सुख भी निन्दित हो जाता है। और दुख की आकांक्षा उनमें भी पैदा हो जाती है जोकि अस्वाभाविक आकांक्षा है।

दुख की अकांक्षा अप्राकृतिक है। दुख का सम्मान अप्राकृतिक है। दुख का आदर अप्राकृतिक है। और आदमी तो रुग्ण हो जायेगा, बीमार हो जायेगा। मनोचिकित्सा कहती है सुख स्वीकार, तपश्चर्या नहीं, तप नहीं, त्याग नहीं। भोग सहज ही स्वीकार है वह मन की गहरी से गहरी आकांक्षा है। इसलिए मनोचिकित्सा मैं कहूं एक क्रांति है मनुष्य के सारे मूल्यों की। उसे चिकित्सा नहीं, therapy नहीं, वह आमूल रूपान्तरण है। वह इस बात की खोज है कि क्या हम सुख को केन्द्र बनाने के लिए राजी हैं। क्या हम इस बात के लिए राजी हैं कि आदमी सुखी हो और हम सम्मान दे सकें। क्योंकि तब हम भी दुख के ऊपर उठने की चेष्टा में संलग्न होंगे। और आदमी हो सके इसके लिए स्वीकृति दे सकें। तो शायद कभी ऐसा हो सकता है कि समाज विक्षिप्त न रह जाये। और ऐसा हो सकता है कि आदमी को पागल होने की जरूरत न रह जाये। किसी को पागल होने की जरूरत इसलिए पैदा होती है क्योंकि हम जबरदस्ती करते हैं। वह पागल होने की जरूरत पैदा करवा देती है। लेकिन यह तो पूरे समाज, पूरी मनुष्यता को ध्यान में रखकर कह रहा हूं। और इसलिए मैं मानता हूं कि धार्मिक लोगों ने जो मनोचिकित्सा का विरोध किया है उसमें उनकी बड़ी समझदारी है। क्योंकि मनोचिकित्सा यदि ठीक से विकसित होती है तो वह भविष्य का धर्म होगी। और भविष्य में हिन्दू और मुसलमान, ईसाई और जैन के लिए कोई उपाय नहीं रह जायेंगे। मनोचिकित्सा भविष्य का धर्म है, इसलिए सारे धार्मिक लोग मनोचिकित्सा के खिलाफ खड़े हो गये और सारे धर्मगुरु फ्रायड को निन्दित करने और गालियाँ देने में लग गये तो आश्चर्य नहीं है।

तीन क्रांतियाँ यहाँ इस बीच घटित हुई हैं। पहली क्रांति तो तब घटित हुई जब किसी ने यह कह दिया कि पृथ्वी केन्द्र नहीं है। सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता। सूरज का चक्कर पृथ्वी ही लगा रही है। मनुष्य के अहंकार को पहली चोट पहुंची। गैलिलियो ने मनुष्य के अहंकार को जो पहली चोट पहुंचायी वह न महावीर, न बुद्ध, न कृष्ण, न राम, न कोई भी पहुंचा सका था। क्योंकि बहुत गहरे में सब ने कहा था कि अहंकार छोड़ो लेकिन फिर भी मनुष्य के अहंकार ने तृप्ति की थी कि तुम ब्रह्म हो। इधर वे कहते थे कि अहंकार छोड़ो फिर कहते थे अहम् ब्रम्हास्मि। इधर वे कहते थे कि अहंकार बुरा है उधर वे कहते थे तुम्हीं केन्द्र हो सारे जगत के। गैलिलियो ने कहा पृथ्वी केन्द्र नहीं है। बर्नाड शा अमरीका में एक दफे बोल रहे थे। उसने कहा कि गैलिलियो गलत है, पृथ्वी ही केन्द्र है और सूरज ही चक्कर लगाता है। एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि आप जैसा बुद्धिमान आदमी और इतने प्रमाणित तथ्यों के बाद भी ऐसा कहता है। आपको क्या वजह दिखायी पड़ती है, आप ऐसा क्यों कहते हैं। बर्नाड शा ने कहा वजह एक है और साफ है कि बर्नाड शा जिस पृथ्वी पर रहता है वह किसी का चक्कर नहीं लगा सकती। सूरज को ही चक्कर लगाना पड़ेगा। आदमी का भी यही ख्याल था कि आदमी जिस पृथ्वी पर रहता है वह केन्द्र हैं सारे यूनिवर्स (universe) का, सारे विश्व का, सब चाँद तारों का। एक छोटी सी नकार पृथ्वी, जिसको हम पूछने जायेंगे चाँद तारों से तो कोई पता भी न लगेगा। उसको हमने केन्द्र बनाया था,

आदमी के अहंकार ने उसको केन्द्र बनाया था । एक बड़ी छोटी दुनिया थी जिसमें पृथ्वी केन्द्र थी और जिसमें सब चाँद तारे इसके आसपास घूम रहे थे । सूरज छोटा था पृथ्वी से, चाँद छोटा था, तारे छोटे थे । सूरज साठ हजार गुना बड़ा है । और यह सूरज बहुत छोटा सूरज है । वे जो तारे हैं वे सूरज से करोड़ों गुने बड़े हैं । लेकिन आदमी के अहंकार ने अपने को केन्द्र बना लिया था । गैलिलियो ने एक केन्द्र तोड़ दिया । आदमी विस्थापित हो गया, रिफ्यूजी हो गया पहली दफे इस बड़े जगत में, शरणार्थी हो गया इस बड़े जगत में । केन्द्र टूट गया उसके घर में । पृथ्वी घर न रह गई । केन्द्र कहीं और है और अज्ञात है, पृथ्वी केन्द्र न रही ।

दूसरी चोट डार्विन ने पहुंचायी और उसने कहा कि इस भ्रांति में न रहो कि तुम ईश्वर से पैदा हुए हो । क्योंकि पुराने लोग कहते थे कि आदमी ईश्वर और देवताओं के पास, ईश्वर का बेटा, ईश्वर पुत्र । इसीलिए हम ईश्वर को पिता कहते हैं । यह मनुष्य का गहरा से गहरा अहंकार है । किन्तु यह धारणा क्योंकि यह आदमी ऊँची बात कह रहा है कि God is the father वह असल में यह कह रहा है कि man is the son जब वह कहता है कि ईश्वर पिता—हे परम पिता, तब वह कह रहा है कि हम कोई साधारण नहीं है, ईश्वर के खास बेटे हैं । वह अपने को केन्द्र में रख रहा है सिर्फ नम्बर दो, ईश्वर के बाद । और चेष्टा यह है कि ईश्वर अगर मिल जाये तो उसे धक्का देकर उसके सिंहासन पर विराजमान हो जाये और कहने लगे मैं परमात्मा हूं, अहम् ब्रम्हास्मि । चेष्टा उसकी यही है । इसलिए वह जो बहुत विनम्र थे उन लोगों ने कहा कि हम ईश्वर के बेटे हैं और जो और भी अविनम्र थे उन्होंने कहा अहम् ब्रम्हास्मि । इससे नीचे हमारा कोई उपाय नहीं है । डार्विन ने एक धक्का दे दिया बहुत जोर से । उसने कहा कि बातों में पड़े हुए हो । monkey the father, वह जो बंदर है वह है परमपिता । कहाँ की बातों में पड़े हुए हो, कौन ईश्वर, कैसा ईश्वर, कौन पिता, कौन बेटा । बेटे हो बंदर के, लंगूर के । बहुत विरोध हुआ डार्विन का क्योंकि उसने दूसरा धक्का दे दिया । पृथ्वी न सही केन्द्र हो, कोई हर्जा नहीं पर हैं तो हम ईश्वर के बेटे । फिर धक्का जोर से लगा कि आदमी और बंदर के बेटे ।

तीसरा धक्का दिया फ्रायड ने और उसने कहा कि अब तक जिसे तुम समाज, सभ्यता, संस्कृति कहते हो वह एक लंबा रोग है a long neurosis । एक लम्बी विक्षिप्तता है जिसे तुमने कहा है समाज, संस्कृति और धर्म । मन्दिरों में चलने वाली पूजा, और मस्जिदों में पढ़ी जाने वाली नमाज आदमी के लम्बे रोग के सबूत हैं । संस्कृति और सभ्यता महारोग हैं । और आदमी सिर्फ पागल हुआ है और कुछ भी नहीं । तीसरी चोट लग गई । अब हम बिल्कुल विस्थापित, एकदम शरणार्थी हो गये हैं । अब कहीं खड़े होने की जगह न रह गई । पृथ्वी केन्द्र न रही, आदमी ईश्वर का बेटा न रहा । संस्कृति सभ्यता और धर्म महान चीजें न रहीं, एक रोग हो गयीं । लेकिन पहली बात स्वीकृत हो गई । धीरे धीरे हम राजी हो गये कि पृथ्वी केन्द्र नहीं है । दूसरी बात भी धीरे धीरे स्वीकृत हो गयी । लेकिन तीसरी बात अभी तक स्वीकृत नहीं हुई क्योंकि वह तीनों से ज्यादा कठिन है । उसका मतलब है हमारे सारे पूर्वज, सारे पुरखे, सारे ग्रंथ हमें रुग्ण ही करते रहे हैं । अभी तो वह शास्त्र पैदा ही नहीं हुआ है जो हमें स्वस्थ करे । और अभी तक वह धर्म पैदा नहीं हुआ है जो हमारे सुख के केन्द्र पर खड़ा हो । अभी तक हम वह संस्कृति पैदा नहीं कर पाये हैं जो इस पृथ्वी की हो । और इस पृथ्वी के लोगों को आनन्द से भर सके ।

आदमी रुग्ण है क्योंकि आदमी आनन्दित नहीं हो पाया है । इसलिए मेरी दृष्टि से यह बड़ी से बड़ी मनोचिकित्सा है कि आदमी कैसे आनन्दित हो जाये । रोग पाजिटिव positive नहीं है, रोग कभी भी positive पाजिटिव नहीं है, रोग कभी भी विधायक नहीं हैं, रोग सदा ही निगेटिव negative है, नकारात्मक । रोग यह खबर देता है कि जो होना था

वह नहीं हो सका, इसीलिए रोग हो सका है। जो होना वह हो जाये तो रोग बिदा हो जायेगा। मनुष्य स्वस्थ हो सकता है लेकिन एक एक व्यक्ति की चिकित्सा से नहीं, पूरी मनुष्य जाति की चिकित्सा की जरूरत है। और उसे चिकित्सा कहना उचित न होगा, Surgery सर्जरी कहना ही ठीक होगा, शल्य क्रिया कहना ही ठीक होगा। पूरी मनुष्य जाति की समस्त धारणाओं की शल्य चिकित्सा की जरूरत हो गई है। सारे धर्मों को आपरेशन की जरूरत है। तो हम मनुष्य को स्वस्थ होने की दिशा में खड़ा कर सकते हैं। फिर भी हो सकता है कि कुछ लोग विक्षिप्त होंगे। मनोचिकित्सा की फिर जरुरत होगी। लेकिन तब-तब कुछ लोग इसलिए विक्षिप्त होंगे कि उनके भीतर Genetic जेनिटिक खराबी हो सकती है, शारीरिक खराबी हो सकती है, यांत्रिक खराबी हो सकती है। लेकिन तब उन्हें मनोचिकित्सा की जरूरत न होगी, उन्हें सिर्फ चिकित्सा की जरूरत होगी। शुभ होगा वह दिन जब किसी आदमी को मनोचिकित्सा की जरूरत न रह जाये। चिकित्सा सिर्फ शारीरिक, यांत्रिक रह जाये। वह दिन आ सकता है। लेकिन अभी तो हालतें उल्टी हैं। अभी तो हालतें ये हैं कि शरीर को भी जो हम चिकित्सा कर रहे हैं उनमें से पचास प्रतिशत रुग्णतायें शरीर की नहीं हैं। नाहक दवायें उनको हम दिये चले जा रहे हैं। वे पचास प्रतिशत बीमारियाँ भी मन से आ रही हैं। इधर हम आदमी को ठीक कर रहे हैं उधर आदमी नयी बीमारी की तैयारी किये चला जा रहा है। इधर वह अस्पताल से बाहर निकला है दवाओं का (prescription) पुर्जा लेकर उधर उसके भीतर उसका मन बीमारी का नया प्रस्क्रिपशन (पुर्जा) तैयार कर रहा है। जब तक वह दवा लेकर घर पहुंचता है, मन उसकी नयी बीमारी खोज लेता है। क्योंकि चुकता हमारे जीवन का ढंग बीमार होने का ढंग है। अब तक हम जीवन का ढ़ंग नहीं खोज पाये हैं।

मैं मनोचिकित्सा को मनुष्य के जीवन में जीने का ढंग खोजने का पहला कदम कहता हूं लेकिन सामूहिक अर्थों में। एक एक व्यक्ति से कुछ नहीं होगा। बल्कि एक एक व्यक्ति की चिकित्सा में अगर मनोचिकित्सा उलझती है तो शायद वह अपने क्रांति के काम को पूरा न कर पाये। और वह सिर्फ पुरानी समाज व्यवस्था की एक टिप्पणी, एक foot note रह जाये। क्योंकि पुरानी समाज व्यवस्था में जो बीमार हो जाते हैं मनोचिकित्सा उसे ठीक करके फिर उसी कटघरे में वापिस भेज देता है। इसलिए नवीनतम चिन्तन है जो इस दिशा में वह यह मानता है कि एक एक आदमी को ठीक करके वापिस भेजने से कुछ नहीं होगा। एक पत्नी बीमार मेरे पास आती है। मैं उसे समझा बुझाकर वापिस पत्नी बनाकर अपने पति के पास वापिस भेज देता हूं। वह पति ही उसकी बीमारी का कारण है। सच तो यह है जब तक दुनिया में पति हैं तब तक दुनिया में कोई भी पत्नी स्वस्थ नहीं हो सकती। असल में पति होना ही रोग की बहुत गहरी जड़ है। कोई आदमी ओनरशिप ownership कर रहा है, कोई आदमी पजेस possess कर रहा है कि मैं मालिक हूं। कि मैं स्वामी और तुम दासी, तब तक रोग जारी रहेगा। एक स्त्री बीमार पड़ती है और मेरे पास आती है तो मुझे बहुत मुश्किल पड़ जाती है, मैं इतना ही कर सकता हूं न, कि उसे वापिस लीप पोत के, पत्नी बनाके वापिस घर भेज दूँ। लेकिन अगर मेरी दृष्टि सच में ही गहरी है तो मैं इस कोशिश में लगूँगा कि सवाल एक स्त्री का नहीं है कि वह बीमार हो गई है, हिस्टरिक Hysteric हो गई है, पागल हो गई है। यह सवाल पूरी स्त्रियों का है। क्योंकि जब तक स्त्रियाँ पत्नी बनने को राजी हैं और पुरुष पति बनने को उत्सुक हैं तब तक हम एक स्वस्थ आदमी का निर्माण नहीं कर सकते। ये आकांक्षायें ही रुग्ण हैं। कोई किसी को कैसे पजेस possess कर सकता है, कोई किसी का कैसे मालिक हो सकता है। मालिक होने की बात ही पागलपन है। लेकिन वह जारी है। वह जारी रहेगी।

एक बच्चा है जो बीमार हो गया है। वह उपद्रवी है, वह घर में काँच तोड़ता है। वह घर में

चीजें फोड़ देता है। वह घर में किसी की सुनता नहीं है। वह मेरे पास लाया जाता है। उसे मैं क्या करूँ? उसे मैं समझा बुझा कर ज्यादा से ज्यादा यही कर सकता हूं कि काँच न तोड़े और क्या फल होगा। लेकिन वह जिस परिवार में पैदा हुआ है वह पूरा परिवार पागल है जिसके बीच वह पागल होकर आया है। वह परिवार जब तक नहीं टूटता और बिखरता तब तक उसका पागलपन नहीं मिट सकता।

मनोचिकित्सा क्रांति बननी चाहिए। क्योंकि आप मनोचिकित्सा के विद्यार्थी हैं, शिक्षक हैं। इसलिए मैं आप से कहता हूं कि उसे एक एक व्यक्ति की रुग्णता को सहारा, सुविधा नहीं बनाना है उसे क्रांति बनाना है। अन्यथा मनोचिकित्सा भी पुराने आये हुए समाज को सहारा देने का, बल्लियाँ लगाने का काम करेगी। उसमें जो बीमार हो जायेंगे उन्हें ठीक ठीक करके पुराने कठघरे में वापिस भेज देगी। ताकि वे फिर से ठीक से काम करने लगें। और हम स्वस्थ आदमी का क्या मतलब लेते हैं कि जो आदमी काम करता है वह स्वस्थ है। बस ईफीसियन्टली efficiently काम करता है, कुशलता से काम करता है इसलिए स्वस्थ है। बस बात खतम हो जाती है। बेटा काँच न तोड़े, माँ बाप को परेशान न करे तो बेटा स्वस्थ है। बस और हो सकता है बेटा सिर्फ गोबर गणेश हो जाये इसलिए काँच न तोड़े, इसलिए माँ बाप को परेशान न करे। लेकिन हमें इसकी चिंता नहीं कि गोबर गणेश बेटा भी ठीक बन जाये। जीवंत बेटा काँच भी तोड़ सकता है। इसको ठीक से समझ लेना जरुरी है कि जीवंत बेटा काँच क्यों तोड़ रहा है? वह क्रोध प्रगट कर रहा है एक बड़ी व्यवस्था के प्रति जो उसे दबा रही है। वह कुछ तोड़ फोड़ में लगा है क्योंकि क्रोध प्रगट कर रहा है। जो रोगियों को ठीक करने में उतनी उत्सुक नहीं होगी। जितनी इस बात में उत्सुक होगी कि रोग क्यों पैदा होते हैं। और जिस जड़ से पैदा होते हैं उस जड़ को बदलने के लिए आतुर हैं। आज मनुष्य जाति ऐसी जगह खड़ी हो गई है जहाँ एक मनोक्रांति की जरुरत है अन्यथा हम सब पागल हो जायेंगे।

●●●

क्रांति सूत्र

(१) सब समाधान पुराने हैं, समस्यायें हमेशा नयी होती हैं।

(२) ऐसा सस्ता भगवान पाकर क्या करोगे जो घण्टे बजाने से, गीता पढ़ने से, तिलक लगाने से, भीख मांगने को दो पैसे देने से मिलता हो।

(३) सवाल पाने का नहीं, सवाल है उस प्रक्रिया से गुजरना जो पाने की झंझट से मुक्त कर देती है।

(४) अगर सबके भीतर परमात्मा है तो आदमी पूज्य है लेकिन एक आदमी पूज्य है, यह धारणा बड़ी खतरनाक है।

(५) प्रभु का मन्दिर तो चारों तरफ है, जो है।

पत्र प्रेरणा

(सुश्री दर्शन बहिन को लिखा गया पूज्य आचार्य श्री का एक पत्र)

प्यारी दर्शन,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
उसे पाकर अति आनंदित हूं।
इसलिये भी कि तूने अनलिखा.....कोरा कागज भेजा है।
लेकिन, मैंने उसमें वह सब पढ़ लिया है। जो कि तूने नहीं लिखा है, लेकिन लिखना चाहती थी।

शब्द वैसे भी क्या कह पाते हैं?
और लिखकर भी तो जो लिखना था, वह सदा अनलिखा ही रह जाता है।

इसलिए तेरा मौन पत्र बहुत प्यारा है।
वैसे भी जब तू मिलने आती है तो चुप ही रहती है।
लेकिन तेरी आंखें सब कह देती हैं।
और तेरा मौन भी।
किसी गहरी प्यास ने तुझे स्पर्श किया है।
किसी अज्ञात तट ने तुझे पुकारा है।
प्रभु जब बुलाता है तो ऐसे ही बुलाता है।

लेकिन कब तक तट पर खड़े रहना है?
देख—सूरज निकल आया है और हवायें नाव के पालों को उड़ाने को कैसी आतुर हैं?

रजनीश के प्रणाम
७।१२।१९६९

(पूज्य आचार्य श्री द्वारा श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई को लिखा गया एक पत्र)

मेरे प्रिय,
प्रेम। आपका पत्र पाकर अति आनंदित हूं।
जीवन में चिंतायें हैं, लेकिन चिंतित होना आवश्यक नहीं है।
क्योंकि, चिंतित होना चिंताओं पर नहीं, वरन् उनके प्रति हमारे दृष्टिकोण (Attitude) पर निर्भर है।

इसलिए चिंतित व्यक्तित्व सदा ही हमारा चुनाव है।
और अचिंतित व्यक्तित्व भी।
ऐसा नहीं है कि अचिंतित व्यक्तित्व के लिए चिंतायें नहीं होती हैं।
चिंतायें तो होती ही हैं।
वे तो जीवन का अनिवार्य हिस्सा हैं।
लेकिन वह उन्हें ओढ़कर नहीं बैठ जाता है।
वह सदा ही उनके पार देख पाता है।
अंधेरी रात्रियाँ उसे भी घेरती हैं, लेकिन उसकी दृष्टि सुबह के ऊगने वाले सूरज पर लगी होती है।
इसलिए, उसकी आत्मा कभी भी अंधकार में नहीं डूब पाती है।
और बस इतना ही आवश्यक है कि आत्मा अंधकार में न डूबे।
शरीर तो डूबेगा ही।
वस्तुतः वह तो डूबा ही है।
मरणधर्मा का जीवन अंधकार में ही है।
आलोक में अमृत के अतिरिक्त और कोई अपनी जड़ें फैलाना चाहे तो कैसे फैला सकता है?
गुणा को प्रेम।
बच्चों को आशीष।
सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
७।२।१९७०

●●●

प्राणवान पुकारें

(१) एक एक व्यक्ति की प्रज्ञा जग जानी चाहिये, उसे मैं धार्मिक क्रांति कहता हूं।

(२) विश्वास ने मनुष्य के भीतर मन्थन की संभावना तोड़ दी है।

(३) अपना चित्त चाहिए, साहसी, सोचने वाला, खोजने वाला।

(४) उन्मुक्त विचार यानी लंबा संघर्ष।

(५) विचार से बड़ा तप नहीं है।

(६) विचार की आग से गुजरते ही, वे सब दिवालें, वे सब ढाँचे टूट जाते हैं, सब समाधान खो जाते हैं और असुरक्षा में खड़ा कर देता है।

(७) जहाँ जहाँ जबाव नहीं हैं, वहाँ हिम्मतवर लोग कहेंगे, हम समस्या में जीयेंगे लेकिन झूठे जवाब नहीं पकड़ेंगे।

संकलन : श्रीमती जयवंती
जूनागढ़

भेंट वार्ता

जलते हुए प्रश्न : दहकते हुए उत्तर

आचार्य श्री से प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता मनोजकुमार की भेंट वार्ता

—पिछले अंक में आपने वार्ता की वह किश्त पढ़ी जिसमें आचार्य श्री ने कहा : 'धर्म है अनंत रहस्य। रहस्य नहीं होगा तो संगीत, काव्य, कला, शिल्प एवं सौंदर्य निर्मूल्य हो जायेंगे।'

और आगे प्रस्तुत हैं इसी भेंट वार्ता के अग्रिम चरण :

मनोज : क्या रहस्य की समाप्ति, आत्मघात तक ले जाती है ?

आचार्य जी : हां, हम जान जायेंगे सब कुछ और जानने को कुछ न रहेगा तो सिवाय आत्मघात करने के कुछ भी नहीं बचता है। कुछ करने को नहीं बचता। पश्चिम में जो इतने जोर का आत्मघात है उसके एक कारणों में से मैं यह मानता हूं कि पश्चिम में रहस्य का बोध क्षीण हो रहा है। जो रहस्य का बोध है जीवन का सार वह क्षीण हो जाय तो मरने के सिवाय बचता क्या है, करने को क्या बचता है ? जरा सोचें कि आपने सब जान लिया जो जाना जा सकता था, फिर कल क्या है, कल सुबह उठकर क्या करना है ? एकदम सब ठप हो जाता है, बात खत्म हो जाती है, रास्ता बन्द हो जाते हैं। धर्म का कहना यह है कि नहीं कुछ खत्म होता, कुछ शेष रह जाता है। कुछ शेष रह जाता है जो हमेशा जानने योग्य है। यह जो ब्राह्मण की खोज थी, मिस्टीरियस की, रहस्य की, वह विज्ञान की खोज नहीं है। उनकी खोज में बुनियादी भेद है। विज्ञान की खोज है कि मिस्ट्री को खत्म करेंगे, रहस्य को न रहने देंगे, रहस्य है ही नहीं, सिर्फ हमारे अज्ञान का नाम रहस्य है। विज्ञान की भाषा में इगनोरेंस का मतलब मिस्ट्री है। हम नहीं जानते इसलिए रहस्य मालूम हो रहा है, बाकी रहस्य है नहीं। जान लेंगे और सब खत्म हो जायगा यानी विज्ञान कह रहा है कि आपको फूल सुन्दर मालूम हो रहा है वह सिर्फ इसलिए कि आप उसे केमिकल कैसे बना है यह आपको पता नहीं है।

मनोज : वह ब्रह्माण्ड को बिल्कुल ही ढूंढ़ रहा है ?

आचार्य जी : हां, वह उसी हालत में बिल्कुल ही धार्मिक आदमी है, वह वैज्ञानिक नहीं है। इसलिए जो ठेठ वैज्ञानिक नहीं है वह आइंस्टीन के पिछले वक्तव्यों को सिर्फ मृत्यु के आने की खबर मानता है। आइन्स्टीन घबरा गया है, पैर हिल गये हैं। जो ठीक वैज्ञानिक है वह ऐसा नहीं मानता कि वे वक्तव्य वैज्ञानिक के हैं, वह मानता है कि वैज्ञानिक जो मौत से घबरा गया और जिसकी अब पुरानी पकड़ खो गयी है और अब जो परेशान हो गया और अब जो इस तरह की बातें कर रहा है। लेकिन आइन्स्टीन के पहले के वक्तव्यों में ऐसी बात नहीं है। आखिर में तो बहुत सी चीजों का असर पड़ा। सबसे बड़ा असर यह पड़ा कि उसकी खोजें उसे किसी अंतिम उत्तर पर नहीं ले गयीं। उसकी हर खोज ने उसे ऐसा बताया कि और हजार प्रश्न फिर नये खड़े हो

गये हैं, और कुछ भी नहीं हुआ। एक प्रश्न हल करने गये और जरूर हल हो गया लेकिन उसके हल करते ही हजार प्रश्न खड़े हो गये जो इतने ही गैर हल के हैं जितना पहला प्रश्न था। अब यह रोज होता चला गया तब उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि शायद हम एक प्रश्न से दूसरे प्रश्न पर ही जा रहे हैं। ऐसी अगर प्रतीति हो जाय तो मैं मानता हूं कि धर्म की शुरुआत होती है, उत्तर कहीं भी नहीं है; ऐसा आदमी एकदम धार्मिक हो जायगा। मगर हम उल्टी बात करते हैं। आम तौर से हम देखते हैं कि जिसको हम धार्मिक कहते हैं उसके पास उत्तर है, सवाल शायद न हो। आप उसके पास जाइए तो वह बता देगा कि हां ब्रह्म है, ईश्वर है, आत्मा है, पुनर्जन्म है, फलां है ढिकां है। तब मैं कहता हूं कि वह धार्मिक आदमी नहीं होगा। क्योंकि अगर उत्तर है तो वह वैज्ञानिक हो सकता है क्योंकि उत्तर है उसके पास जिसके पास रहस्य नहीं रहा अब। अगर रहस्य है तो धार्मिक आदमी हैजिटेट करेगा, झिझकेगा, विरोधी भाषा बोलेगा, यानी इधर हां भी करेगा उधर ना भी करेगा। वह दोनों एक साथ कह लेगा ताकि कोई झंझट न हो क्योंकि वह बहुत हैजिटेट कर रहा है, बहुत मुश्किल में है। उसको चीजें साफ और रहस्यपूर्ण लगती हैं।

मैं एक घटना बुद्ध की निरंतर कहता हूं कि बुद्ध एक गांव में गये और एक आदमी मिला है और उस आदमी ने बुद्ध को कहा कि मैं नास्तिक हूं, ईश्वर को नहीं मानता हूं। आपका क्या ख्याल है ? बुद्ध ने कहा ईश्वर को नहीं मानते हो ? ईश्वर ही है, और तो कुछ है ही नहीं। क्या कहते हो, ईश्वर को नहीं मानते ? ईश्वर ही है, और तो कुछ है ही नहीं। आनंद ने बहुत चौंककर देखा कि बुद्ध क्या कहते हैं, वह चुप रहा, भीड़ भाड़ बढ़ गयी। दोपहर एक आदमी आया और उसने कहा मैं आस्तिक हूं, ईश्वर को मानता हूं। बुद्ध ने कहा, पागल हो गये हो ? ईश्वर को बहुत खोजा, कहीं पाया नहीं, है ही नहीं, ईश्वर है ही नहीं। आनन्द और घबरा गया क्योंकि उसने दोनों उत्तर सुन लिए। सांझ एक तीसरा आदमी आया उसने बुद्ध से कहा ईश्वर के संबंध में कुछ कहिएगा. मुझे कुछ पता नहीं। तो बुद्ध ने कहा, तुझे भी पता नहीं, मुझे भी पता नहीं। हम चुप ही रहें तो हर्जा है कोई ? रात जब वह सोने लगे तो आनंद ने कहा कि अभी सो मत जाइए। मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं, मेरा दिमाग खराब हो जायगा। सुबह आपने कहा है, दोपहर आप कहते हैं नहीं, सांझ आप कहते हैं कि कुछ भी पता नहीं, दोनों अगर चुप बैठें तो कोई हर्जा है ? बुद्ध ने कहा कि वह उत्तर तेरे को दिये किसने, तूने लिए क्यों ? जिसको दिये गये थे उसकी बात थी, तुझसे क्या लेना देना है ? उसने कहा, लेकिन ये तीनों उत्तर बिल्कुल विरोधी हैं। उन्होंने कहा, मेरे तीनों उत्तरों का एक ही मतलब है। मैं पहले आदमी को भी हेजीटेशन में डालना चाहता था, बिल्कुल पक्का था उसे कि ईश्वर नहीं है, उसे मैं थोड़ा हिलाना चाहता था। वह आदमी वैज्ञानिक हो गया था, धार्मिक नहीं रहा, पक्का हो गया। वह दूसरा आदमी भी पक्का था, वह कहता था कि ईश्वर है, वह भी चूक गया था मामला। उसको भी मैं हिला दिया था, धक्का दिया कि शायद हिल जाय। मेरे उत्तर की तू फिक्र मत कर। मैं जो कह रहा था वह एक ही काम कर रहा था, सुबह भी, दोपहर भी और सांझ एक बढ़िया आदमी आया था, उसको कोई भी उत्तर देना खतरनाक था क्योंकि वह उसको बुद्ध का उत्तर समझकर पकड़ लेता और निश्चित हो जाता। तो मैंने कहा, जब तुझे भी पता नहीं तो चुप बैठा तो कोई हर्जा है ?

यह जो बुद्ध जैसा आदमी है यह तो एक धार्मिक आदमी है। धार्मिक आदमी को समझना मुश्किल हो जाता है क्योंकि उसके सारे वक्तव्य विरोधी मालूम पड़ते हैं। उसके एक एक वाक्य में भी विरोध होता है और सारे विरोध का कारण इतना है कि उसे रहस्य का बोध हो रहा है और रहस्य के बोध का आप ख्याल करें, बहुत अद्भुत बात है। रहस्य के बोध का मतलब यही है कि दोनों विरोधी मौजूद हैं इसलिए रहस्य है, नहीं तो रहस्य हो नहीं सकते। यहां जन्म भी है, मौत

भी है और एक साथ है। यहां प्रेम भी है और घृणा भी है और एक साथ है। यहां फूल भी हैं और कांटा भी है और बिल्कुल एक साथ हैं और एक ही डंडी पर और एक ही प्राणधारा से आये हैं इसलिए रहस्य है। रहस्य का मतलब यह है कि विरोधी, जिनके बीच में कोई तालमेल नहीं दिखता हो वह भी है और एक बड़ी यूनिटी में दोनों समाविष्ट हैं और दोनों मौजूद हैं। आपको मैं सुबह रोते देखता हूं, दोपहर हँसते देखता हूं, बड़ी मुश्किल हो जाती है कि जो आदमी रोता था वह हंसता कैसे है क्योंकि अगर आदमी को रोना आता था तो यह हंसना कैसे आ रहा है आदमी से। यही उचित हुआ, यह साफ हुआ होता कि जो रोता वह रोता, जो हसता वह हंसता, गणित साफ रहता। हम जानते कि फलां आदमी हंसता है, फलां आदमी रोता है। यह बड़ी मुश्किल है। वह आदमी सुबह रोता है, साँझ हंसता है और ऐसी भी हालतें आ जाती हैं कि वह हंसता भी हो और रोता भी हो और दोनों एक साथ भी कर लेता और तब बड़ी मुश्किल हो जाती। तब हम क्या करें? तब मिस्ट्री हो जाती।

मैं एक घर में ठहरा हुआ था। एक बड़ी मजेदार घटना हो गयी। साँझ बगीचे में एक कुर्सी पर बैठा हुआ था और घर की जो गृहणी थी वह मेरे सामने तख्त पड़ा हुआ था उस पर लेटी हुई थी। मेरा एक पैर उसके सिर के पास तख्त पर रखा हुआ था। उसकी नाक मेरे पैर के करीब थी। मैंने अंगूठे से उसकी नाक छू दी। वह एकदम से झपकी में थी, घबरा गयी और एकदम रोने लगी। मुझे कुछ पता नहीं था कि उसको ऐसी घबराहट हो जायगी। वह एकदम रोने लगी। सब लोग इकट्ठे हो गये और जब मैंने उससे कहा, इतना घबराओ मत, हुआ क्या? तो वह हंसने भी लगी कि उसकी समझ में भी आ गया कि सिर्फ मैंने उसकी नाक में अंगूठा लगाया और उसकी घबराहट, उसका रोना और हंसना सब एक साथ हो गया। तब तो उस घर के लोग भी बहुत घबरा गये क्योंकि इसका मतलब यह हुआ कि कोई गड़बड़ बात हो गयी, भूतप्रेत हो गया। जहाँ मिस्ट्री है वहां भूतप्रेत फौरन मौजूद हो जाय न? अगर वह रोये तो भी समझ में आ जाय कि क्या मामला है। जब वह शांत हुई तो मैंने उससे पूछा कि तूने दोनों एक साथ क्यों किये। उसने कहा, मुझे खुद मुश्किल हो गयी। मुझे हंसी इस बात की आती थी कि क्या गंवारी मैं कर रही हूं और घबरा तो मैं गयी ही थी। वह तो रुक ही नहीं रहे थे आंसू, बहे चले जा रहे हैं। मैं अपनी ही आंसुओं पर रो और हंसने को दोनों से पीछे खड़े होकर देख भी रही थी। तब यह मिस्ट्री हो जाती है, तब यहाँ बहुत विरोधी स्वर इकट्ठे हो जाते हैं और वह एक ही व्यक्ति में सम्हाले हुए हैं और एक ही जगत में इतना विरोध समाविष्ट है, वह उसकी वजह से रहस्य है।

एक घटना मैं पढ़ रहा था। एक विचारक किस्म का आदमी जो निरंतर सोचता रहता पहले महायुद्ध में भर्ती हो गया। वह युवक था और उसको भी लगा कि युद्ध में जाना चाहिए। वह एक युनिवर्सिटी का प्रोफेसर था फिर युद्ध में चला गया लड़ने के लिए। पर वह थोड़ा सोच विचार वाला आदमी था। उसको जब मिल्ट्री में ट्रेनिंग के पहले मौके आये तो उससे जब कहा जाय लेफ्टटर्न तो सारे लोग घूम जायें, लेकिन वह खड़ा रह जाय। उसको कहा गया कि आप यह क्या कर रहे हैं तो वह कहता कि मैं थोड़ा सोच रहा हूं कि लेफ्ट यानी क्या। राइट क्या है और लेफ्ट क्या है। और फिर मैं यह भी सोचता हूं कि घूमना या नहीं घूमना और फिर मैं यह भी सोचता हूं कि घूमने का अर्थ क्या है और फिर मैं यह भी देखता हूं कि लेफ्टटर्न के बाद फिर राइटटर्न हो जाना है तो मैं रुका रहता हूं कि लोग लौटकर फिर हो जायेंगे सीधा। ऐसा आदमी तो काम का न था लेकिन वह ले ही लिया गया था। वह इज्जत का आदमी था और जाना माना आदमी था। उसके कैप्टन ने समझा कि उसको कोई दूसरा काम लगा दें। फिर उसे खाना बनाने के मैस में भेजा गया। उससे कहा कि एक छोटा मोटा कोई काम करो। उसे बड़े मटर और छोटे मटर अलग करने का काम दिया गया। घंटे भर बाद कैप्टन वहां आया तो देखा कि वह वैसे ही बैठा है, मटर वैसे ही

रखे हुए थे । उसने कहा, आप अभी तक अलग नहीं कर पाये ? इतना छोटा काम । उसने कहा, मैं अलग कभी का कर लेता लेकिन कई मटर ऐसे हैं जो न छोटे हैं न बड़े हैं और मैं इस चिन्ता में हूं कि इनको कहां किया जा सकेगा ? पहले यह पक्का तो हो जाय नहीं तो अनावश्यक मैं मेहनत करूं । कुछ बड़े हैं माना, कुछ छोटे हैं माना, लेकिन कुछ ऐसे हैं जो न छोटे हैं न बड़े हैं और जब तक उनका पक्का न हो जाय तब तक अकारण श्रम में जाने की कोई जरूरत नहीं । पक्का हो जाना चाहिए ।

अब ऐसा जो आदमी है यह मेरी दृष्टि में धार्मिक हो सकता है । अब हमें कभी ख्याल नहीं आता कि दोनों के बीच में भी कुछ है । हाँ, ऐसे लोग भी हैं जो संत भी नहीं हैं और असंत भी नहीं हैं और जिनको कहीं भी नहीं रखा जा सकता लेकिन हमने साफ बांट लिया है । अच्छे लोग हैं, बुरे लोग हैं और ऐसे लोग भी हैं जो दोनों नहीं हैं । हाँ और ही अर्थ के लोग हैं उनको हम कहाँ रखेंगे । वह मिस्ट्री है और वह मिस्ट्री निरंतर है, सब तरफ है । कुछ जिसे हम सुन्दर कह देते हैं, कुछ नहीं है जिसको हम कुरूपता कह देते हैं लेकिन वह जो कुछ नहीं है उसको क्या कहें? वह दोनों नहीं है । हम कहीं बांट देते हैं अपने हिसाब से लेकिन वह दोनों नहीं है । असल में कोई आदमी न बिल्कुल अच्छा ही है न बिल्कुल बुरा है और इन सब चीजों का जो इतने विरोध का मल्टीपलीसिटी है, उसका जो एकदम होना है और एक ही तत्व में अस्तित्व में होना है वह उसका रहस्य है । इसका अगर बोध हो तो हम गणित से पार चले जाते हैं, फिर हम जोड़ नहीं लगाते हैं क्योंकि जोड़ लगाने से नहीं बचता क्योंकि कुछ है जो जोड़ में आता ही नहीं, फिर जोड़ बेमानी हो जाता है और ऐसे रहस्य के बोध की खोज में है ब्राह्मण । उसने जो सूत्र बनाये हैं, ऐसे सूत्र नहीं है जैसा कि गणित के सूत्र हैं, साइंस के सूत्र हैं, वह अलग ही सूत्र हैं । उसकी बात में विज्ञान भी कहना ठीक नहीं है, वह बहुत और बात है ।

उपनिषद में बहुत अद्भुत बात की है उन्होंने जिसे हम आज विज्ञान कहते हैं उसको वह अविद्या कहते हैं । अविद्या का मतलब अज्ञान नहीं । विद्या और अविद्या । विद्या का मतलब है उस तरफ ले जाय जो सच में है । अविद्या का मतलब है उस तरफ ले जाय जो है ही नहीं है लेकिन प्रतीत होता है कि है। अविद्या का मतलब अज्ञान नहीं है । अविद्या का इतना ही मतलब है जो उस तरफ ले जाए जो सच में नहीं है लेकिन प्रतीत होता है कि है । उसकी जो छानबीन और खोज है, अगर विज्ञान का, साइंस का ठीक अनुवाद करना हो तो विज्ञान नहीं करना चाहिए उसका अनुवाद अविद्या ही करना चाहिए क्योंकि विज्ञान का और ही मतलब होता है । इस देश के चिन्तन में विज्ञान का और ही मतलब होता है । उसका मतलब ज्ञान को विशेष धारा में बहाने से है विज्ञान का मतलब है विशेष ज्ञान । एक तो सिर्फ ज्ञान है, जिसको महावीर ने बहुत अच्छा शब्द दिया है, केवल ज्ञान । जस्ट नोइंग, नाट नोइंग एनीथिंग । किसी चीज को नहीं जान रहे हैं, बस जान रहे हैं । जानना भर है तो उसको कहते हैं मात्र ज्ञान, और जो ज्ञान है उसको वह कहते हैं, किसी चीज को जान रहे हैं उसको विज्ञान कहते हैं और विज्ञान दो तरह के हैं, विद्या और अविद्या । अविद्या मतलब वह विज्ञान जो उन चीजों को जान रहा है जो सच में नहीं हैं । जैसे कोई सपने की खोज में लगा हुआ है जो नहीं है लेकिन है, और उसकी खोज कर रहा है । कोई फ्राइड है वह सपने की खोज कर रहा है और सारा जीवन लगा रहा है । वह साइंस खड़ी कर रहा है इसको वह कहेंगे अविद्या । सपने की खोज है न आखिर, किसी ऐसी चीज की खोज है जो है नहीं । विज्ञान के दो हिस्से हैं, अविद्या और विद्या ।

मनोज : सपना जब होता है तब होता ही है ।

आचार्य जी : हां बिल्कुल ही होता है और तब भी एक अर्थ में बिल्कुल ही नहीं होता है । तब भी सपना ही होता है, तब सत्य नहीं होता है, हां प्रतीति हमें होती

है कि सत्य है। कभी मेल खा सकता है। सपना कभी सत्य नहीं होता, किसी सत्य से मेल खा सकता है और जिसको हम सत्य कहते हैं उसके सामने तो वह भी सत्य नहीं है सिर्फ जागा हुआ सपना है। हमारे दो तरह के सपने हैं, एक रात के सपने हैं और एक जो जागकर देखते हैं, इसलिए जागे हुए सपने रात में खत्म हो जाते हैं। सोये में पता नहीं रह जाता है उनका।

मनोज : मैं हूं तो एक पत्थर। रास्ते में पड़ा हुआ हूं। रास्ते से जो गुजरा उसने जाते जाते एक ठोकर मुझे लगायी और मैं एक कदम आगे सरक गया। चलते चलते उम्मीद है कि आप भी एक ठोकर लगाते जायेंगे। आपकी जरा दिलचस्पी हो जायगी, मैं जरा आगे खिसक जाउंगा। आगे का मतलब पीछे भी हो सकता है। मैंने रास्ते पर मुसाफिर को आगे भी जाते देखा है और पीछे भी आते देखा है। मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि आगे क्या है पीछे क्या है ?

आचार्य जी : बात तो बहुत बढ़िया पूछी आपने। एक बात है असल में। जबतक हम आगे जाते रहेंगे और पीछे जाते रहेंगे कोई ठोकर लगा सकता है, पीछे जाने वाला भी और कोई ठोकर लगा सकता है आगे जाने वाला भी। लेकिन एक ऐसी जगह भी है जहां न हम आगे जाते हैं न पीछे जाते हैं, जहां हैं वहीं रह जाते हैं। तो उस ठोकर की तलाश करनी चाहिए जो हमें वहीं है, वहीं छोड़ जाय जहां हम हैं। न आगे ले जाय, न पीछे ले जाय क्योंकि जिसे हम अभी आगे कहेंगे वह पीछे हो जायेगा कल आगे कहा था न जो, आज पीछे हुए जा रहा है लेकिन एक कोई जगह है जहां हम हैं। आगे और पीछे क्यों ? हम वहीं क्यों न रह जायें जहां हैं क्योंकि आगे बहुत बार तो गये, कहीं पहुंचे ? अभी महेश योगी से मेरी बात हुई। एक बहुत मजेदार बात हुई। उन्होंने कहा है कि वहां जाने के लिए कुछ करना पड़ेगा। यहां से वहां जाने के लिए कुछ करना पड़ेगा फ्राम हियर टू देयर। कोई रास्ता खोजना पड़ेगा, कोई विधि बनानी पड़ेगी, कोई मार्ग बनाना पड़ेगा। जाना है यहां से वहां। तो मैंने उनसे कहा कि अगर यहां से वहां जाना होता तो जरूर रास्ते बनाने पड़ते। जाना है यहां से यहीं, फ्राम हियर टू हियर। अगर वहां से यहां आना होता तो भी कुछ रास्ता बना लेते लेकिन एक ऐसा जाना भी है जो यहां से यहाँ ही है। कहीं से कहीं नहीं, यहां से यहीं। किसी को कहीं जाना नहीं है, एक बार हम इतना ही जान लें कि कहां हैं और सब जाना बन्द हो जाता है, आगे भी और पीछे भी। तो उस ठोकर की अपेक्षा ही मत करें जो आगे ले जाय और पीछे ले जाय। उस ठोकर की प्रतिक्षा करें जो वहीं छोड़ जाय जहां हम हैं और वह ठोकर कोई भी नहीं दे सकता। लेकिन क्यों जायें आगे, क्यों जायें पीछे ?

उस दिन मैं कह रहा था, एक जैन फकीर अपने बगीचे में गड्ढा खोद रहा है, कुछ पौधे लगा रहा है। एक व्यक्ति आया है और पूछता है कि मुझे शांत होना है मैं क्या करूं ? तो वह फकीर खोदता है और कहता है जो करते हो वही करो। वह आदमी कहता है कि शायद आप काम में हैं इसलिए बेमन से कुछ जबाब दे रहे हैं तो वह फकीर कह रहा है कि अगर समझ में न आये तो बैठकर देखो कि मैं क्या कर रहा हूं, तो वह आदमी थोड़ी देर बैठ जाता है। वह गड्ढा खोद रहा है, खोद रहा है, पसीना बह रहा है, धूप है। वह आदमी कहता है कि काफी देर हो गयी, आप गड्ढा खोद रहे हैं लेकिन मैं कुछ और पूछने आया हूं। मैं यह पूछने आया हूं कि मैं शांत कैसे हो जाउं। फकीर कहता है मैं सिर्फ गड्ढा ही खोद रहा हूं और बिल्कुल शांत हूं। अगर मैं गड्ढा भी खोदूं और कुछ और भी करूँ तो अशांत हो जाउँगा, मैं सिर्फ गड्ढा ही खोद रहा हूं। अशांति का कोई उपाय नहीं क्योंकि मैं गड्ढा खोद रहा हूं और मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। तुम भी जो करते हो करो। वह आदमी कहता है कि फिर भी कोई जीवनचर्या बता दें आप ताकि वैसा ही करूँ। वह फकीर कहता है जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूं, अपनी तरफ से मैं कभी नहीं सोया और जब नींद खुलती है तो उठ जाता हूं, अपनी तरफ से मैं कभी नहीं उठा और जब भूख लगती

है मैं मांगने चला जाता हूं, अपनी तरफ से मैंने कभी नहीं खाया। जब भूख नहीं लगती तब नहीं खाता हूं और सांस भीतर आती है तो भीतर आने देता हूं और बाहर जाती है तो बाहर जाने देता हूं। और मेरी कोई चर्या नहीं है और मैं बड़ा शांत हूं। और अगर तुम्हें भी शांत होना है तो ऐसा ही करो। वह आदमी कहता है यह तो हम भी करते हैं। जब सोते हैं सो जाते हैं, जब खाते हैं खा लेते है। इसमें आप कौन सी नयी बात कहते हैं। फकीर ने कहा, फिर तुम जाओ और जरा गौर से देखना कि जब तुम सोते हो तो तुम सोते ही हो कि और भी बहुत कुछ करते हो। और जरा गौर करना कि तुम खाते हो तो खाते ही हो या और भी बहुत कुछ करते हो। फकीर ने कहा कि मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा कि जो सिर्फ खाता हो और सिर्फ खाता ही हो। आदमी खाता है और कहीं और भी कुछ करता है। और उस फकीर ने जाते वक्त कहा कि हमने इतना ही जाना है जो है वहीं है, जहां है वैसे ही है। हमें न कहीं जाना है और न कहीं पहुंचना है। मेरी दृष्टि में परम साधना का यही अर्थ है और परम शांति का यही अर्थ है कि हम जहां हैं और जो हैं उसमें हम पूरे राजी हो जायें। न आगे जायें, न पीछे जायें तो बिल्कुल मतलब नहीं, आगे जायेंगे तो भी मतलब नहीं क्योंकि पीछे और आगे हम जायेंगे तो किसके पीछे जायेंगे, किसके आगे जायेंगे। अपनी ही जगह से हटकर रहेंगे। वह घड़ी का पेंडुलम है, बायें से दायें चला जाता है तो दायें से बायें चला जाता है। और बड़े मजे की बात है कि जब वह बायें जाता है तब हमें दिखता है कि बायें जा रहा है लेकिन बायें जाते वक्त वह दायें जाने की ताकत इकट्ठी कर रहा है। उल्टा जा रहा है, जा रहा है बायें, ताकत इकट्ठा कर रहा है दायें जाने की। फिर वह दायें जा रहा है तब हम समझते हैं कि दायें जा रहा है, तब वह बायें जाने की ताकत इकट्ठा कर रहा है। जब एक आदमी का जन्म हो रहा है तब वह मरने की ताकत इकट्ठी कर रहा है और जब वह मर रहा है तब वह जन्म लेने की ताकत इकट्ठी कर रहा है और जब एक आदमी जवान हो रहा है तब वह बूढ़ा होने की ताकत इकट्ठी कर रहा है मगर वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। हम जब भी इस कोने से उस कोने जायेंगे तो हम फिर इसी कोने पर वापिस लौटने की ताकत इकट्ठी करते रहेंगे। इसलिए कहीं न जायें, जहां हैं वहीं रह जायें और ऐसा सोचो कि पत्थर वहीं रह गया है जहां था और वहीं है, कहीं नहीं जाता, न आगे जाता, न पीछे। फिर ठाकर की जरूरत नहीं है, फिर कुछ भी करने की कोई जरुरत नहीं है और अन्तत: ऐसी मनस्थिति में छूट जायें हम तो सब हो जाता है। फिर रह भी नहीं जाता करने को कुछ। मैं तो ध्यान इसी को कहता हूं।

मनोज : क्या सतोरी समाधि के करीब की चीज है? इससे कुछ आने वाला है?

आचार्य जी : असल में मैं जो यह कह रहा हूं, सतोरी का मतलब है।

मनोज : इसमें बीइंग और नान बीइंग की कांसेप्ट नहीं है?

आचार्य जी : जिसमें बिकमिंग नहीं है, जिसमें कुछ होने की दौड़ नहीं है, जो है, है। उसमें कुछ भी दौड़ नहीं है जो है, है। जिसमें जो है उसकी निन्दा नहीं है और जो नहीं है उसकी आकांक्षा नहीं है। जो है, है। ऐसी हालत का नाम सतोरी है। ऐसी हालत में जो एक्स्प्लोजन आता है उसका नाम सतोरी है, समाधि से बहुत अलग बात है। समाधि शब्द से होना तो समाधि का यही अर्थ होना चाहिए। मै तो यही अर्थ करता हूं। समाधि शब्द का मतलब होता है समाधान। उसका मतलब है कि अब कुछ न बचा करने को, कुछ न बचा पाने को, कुछ न बचा जानने को। अगर कुछ भी बचा करने को, कुछ भी बचा जानने को तो अभी समाधान नहीं है अभी असमाधान है। तो समाधि का एक दूसरा मतलब भी होता है मृत्यु इसलिए हम कब्र को भी समाधि कहते है और उसका वही मतलब है कि जिन्दा रहेंगे तो कहीं न कहीं जायेंगे

ही आप । तो क्या जिन्दा रहते हुए कोई आदमी ऐसा हो सकता है कि कहीं नहीं जा रहा है तो एक अर्थ में मर ही गया, समाधिस्थ हो गया। समाधि का भी मतलब तो सतोरी है लेकिन जैसा इस मुल्क में समाधि का मतलब चलता है वह नहीं मतलब रह गया। यहां समाधि का मतलब है जहां पहुंचना है, सतोरी का मतलब है जहां पहुंच गये। अब जहां कहीं नहीं पहुंचना है, कहीं नहीं जाना है।

आज सांझ को जो मैं कह रहा था वह क्वान है। उस पर ध्यान करिये जो असीम है। अब आप असीम पर ध्यान नहीं कर सकते क्योंकि जब भी आप ध्यान करेंगे तो सीमा आ जायेगी। आप असीम को सोच ही नहीं सकते, सोचेंगे तो सीमा आ जायेगी। कितना ही बड़ा सोचेंगे फिर भी सीमा आजायेगी, फिर भी घेरा आ जायेगा। आप अनादि और अनंत को सोच ही नहीं सकते कितना ही सोचें, कितना ही सोचें, कभी तो अंत होगा। नहीं, कभी अंत नहीं होता, नहीं होता कभी शुरू नहीं होता इसको सोच नहीं सकते हैं कितना ही चित्त को खींचते चले जायें, खींचते चले जायें। क्वान का मतलब है एब्सडिटी का बोध। किसी ऐसी चीज का बोध कि जो हो ही नही सकती और अगर आप उसको सोचते ही चले जायें, सोचते ही चले जायें तो एकही परिणाम होगा कि वह तो हो नहीं सकती लेकिन सोचते सोचते ठप हो जायेगा और दो ही चीजें सोच सकती हैं-या तो आप असीम को सोच लें तो सोचना जीत जाता है, आप और बड़े विचारक होकर लौट आते हैं लेकिन असीम को आप सोच ही नहीं सकते और सोचना है असीम को। यहां अब्सीडिटी है। जैसे कि दो हाथ की ताली सुनी है बहुत।

किसी फकीर को कहते हैं कि जा एक कोने में बैठकर एक हाथ की ताली सुन। वह एब्सर्ड है। वह फिर लौटकर आता है अपने गुरु से कहता है कि पैर पर मारने से दो हाथ हो गये, तो ख्याल रखना बिल्कुल एक ही हाथ की ताली बजे, उसे तू सुन और वह एक हाथ की ताली सुनता है, सुनता है। वह तो सुनायी पड़ नहीं सकती और उसका माइण्ड फौरन दूसरी ताली फोव्हाइड कर देता है। कब तक यह सोचेगा कि दीवाल पर बजा ले, जमीन पर बजा ले। वह गुरू से आकर कहता है, गुरू कहता है कि भाग जा तू यहाँ से, तू एक हाथ की ताली सुनकर आ, दो हाथ की नहीं। उसे कमरे में बन्द कर देता है, वह भूखा प्यासा बैठा है। वह सोचता है, एक हाथ की ताली, एक हाथ की ताली, वह नहीं बजती। वह कैसे बजे, बज ही नहीं सकती, लेकिन सोचना है, फिर सोचना है। आखिर वह क्षण आ जाता है कि सोचना एकदम से खो जाता है। वह क्यों खड़ा होगा, क्यों जब सोचना हो ही नहीं तो क्या करियेगा ? और माइंड जो भी जवाब देता है वह दो चार दिन में खुद ही समझ जाता है कि यह जवाब गड़बड़ है, यह गुरू फिर भगा देगा। तब वह घबरा जाता है, घबरा जाता है और फिर आखिरी वह कहता जाता है कि सोचना एकदम से ठप हो जाता है, कोई चीज एकदम से बन्द हो जाती है। उस वक्त जो खुल जाता है उसका नाम सतोरी है क्योंकि फिर तो कुछ होगा, वह विचार की दुनिया गयी तो निर्विचार आ गया और निर्विचार में हम जहां रहे वहीं रह गये, अब कहीं जाना नहीं रहा, कहीं पहुंचना नहीं रहा। सतोरी एक अर्थ में बहुत और बात है। गहरे से गहरा मतलब तो समाधि का वही है लेकिन जैसा इस मुल्क ने पकड़ा है वह गड़बड़ हो गया है। इस मुल्क में समाधि भी बिकमिंग हो गयी है। एक साधु बैठा है, वह ध्यान कर रहा है, पूजा कर रहा है, पाठ कर रहा है वह कह रहा है मुझे परमात्मा को पाना है, मुझे मोक्ष को पाना है। वह बिकमिंग की बातें कर रहा है। एक आदमी कह रहा है, उसे धन पाना है, एक आदमी कहता है, भगवान पाना है। वह दोनों की बातें एक हैं, दिमाग का ट्रेंड एक है, कुछ पाना है। सतोरी वाला कह रहा कि कुछ पाना नहीं है, जो है, है, न मोक्ष पाना है, न भगवान पाना है इसलिए वह बड़ी अद्भुत बातें भी कह देता है। वह कहता है, संसार और परमात्मा एक ही है। यह दोनों एक ही बात है।

कई दफा ऐसा हुआ कि कोई आदमी आया है पूछने और उस फकीर ने उसको उठाकर खिड़की के

बाहर पटक दिया है और जब वह नीचे गिरा है तो उसने कहा, देख, जाग। अब जो वह धम्म सेनीचे गिरा तो विचार तो खो गये और वह तो स्वीकृत है कि वह फकीर कुछ भी कर सकता है। वह आपके घर नहीं आया था, आप उससे पूछने आये थे, वह कुछ भी कर सकता है। तब वह हँस रहा है खिड़की पर खड़े होकर। वह कहता है, देख। कई दफा ऐसा हो जाता है कि उस चोट में वह एकदम से अवेयर हो जाता है। अब वह सुनता है उसकी बात को और सतोरी हो सकता है। कभी लकड़ी की चोट से भी हो सकता है, कभी चांटे से भी हो सकता है, लेकिन काम किये हैं उन्होंने।

मैं तो जो बात कह रहा हूं वह समाधि का मैं वही अर्थ करता हूं। मुझसे लोग पूछते हैं कि आप ध्यान कब करते हैं। मैंने कभी ध्यान की ही नहीं और वे पूछते हैं कि आप कब करते हैं। मैं तो कभी करता ही नहीं और ध्यान को करना क्या है, बस मैं जैसा हूं वैसा हूं। जो चल रहा है वह चल रहा है। न कुछ पाने को है, न जाने को है, न उपलब्ध करने को है, न कहीं मंजिल है, जो हूं, हूं। फिर ध्यान करने की बात ही नहीं रह जाती, फिर जो हम कर रहे हैं वही ध्यान है।

●●●

"ध्यान से व्यक्तित्व विकास की संभावनायें"

संकलन : नरेन्द्र

आचार्य श्री के पास आने वाले जिज्ञासु अपने साथ आध्यात्मिक प्यास ही लेकर नहीं आते, उनके साथ पीड़ा और शारीरिक कष्ट का भी इतिहास होता है। पर आचार्य श्री के आलोक पूर्ण ज्ञान से समन्वित ध्यान की पद्धति का स्पर्श पाकर वे न केवल मुक्ति का अनुभव करते हैं वरन् एक गरिमापूर्ण व्यक्तित्व विकास का अनुभव भी करते हैं। प्रस्तुत संकलन में एक ऐसे ही जिज्ञासु साधक के ध्यान के पूर्व और ध्यान के बाद के अनुभव हैं।

साधक का परिचय :—पुरुष, आयु ४२ वर्ष, शिक्षा चौथी हिन्दी।

१. प्रेरणा :—(Motivation) आचार्य जी के पास जाने के लिये प्रेरणा और परिचय—आचार्य जी से रक्षाबन्धन सन् १९६३ से परिचय—प्रेरणा के लिए २ घटनायें प्रमुख रहीं। (१) सन् ६२ से शरीर अस्वस्थ था। जब भी कमरे के भीतर जाते तो मुझे किसी के पैर दिखाई देते। दो साल से दिखाई देते रहे पर कभी डर नहीं लगा हाँ उत्सुकता बनी रही। (२) इसके बाद मोतीझिरा निकला। एक दिन सीरियस हो गया। ३२-३३ लंघन, उपवास हो चुके थे। उस रात अधिक शिथिलता आई। ऐसा लगा जैसे पूरे शरीर से खिंचकर एक प्रकाश पुंज आत्मा के रुप में निकला अलग दिख रहा हो। पूरा शरीर अलग पड़ा है और वह प्रकाश पुंज बिल्कुल अलग। इसके बाद तबियत ठीक

हो गई पर स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक नहीं हुआ। तब एक परिचित ने आचार्यजीके पास जाने का सुझाव दिया। परिचित के साथ रक्षाबन्धन ६३ को आचार्य जी के पास गया पहली बार। दोनों घटनायें बतलायी। बातचीत के बाद आचार्य जी ने मुझे ध्यान करना बतलाया। पैर दीखना बंद हो गया, स्वास्थ्य भी ठीक हो गया। दूसरे साल पुन : बीमार हुआ, हृदय की धड़कन थी। दवाईयों से ठीक नहीं हुआ पर ध्यान से फायदा हुआ। ध्यान नियमित करता रहा। ध्यान से पूरी जीवन चर्या पर प्रभाव पड़ा।

२. **बचपन** :–(childhood experience) बचपन ११ साल तक ठीक, पढ़ाई भी ११ वीं साल तक चौथी हिन्दी तक। चार बहिन पाँच भाई, मेरा नम्बर चौथा था। बहिन भाई में प्रेम, माता पिता के प्रति सद्भाव, उनसे प्रेम भी मिला। बचपन में एक ग्राम में रहते थे। ग्राम से जबलपुर आने का कारण था व्यवसाय। बचपन में ब्रम्हचारी महाराज के साथ एक साल बिताया। पिताजी ने भेज दिया था, मन से नहीं गया। मन नहीं लगा इसलिए फिर वापिस आ गया। धर्म के प्रति रूचि इन्हीं साधु महाराज के द्वारा आई। व्रत, उपवास, रात्रि भोजन त्याग, संतुलित जीवन इन्हीं से सीखा पर स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। १३ वर्ष की उम्र में पिताजी जबलपुर छोड़ गये। जिनके पास रहा उनसे प्रेम मिला, उनका विश्वास पात्र बना, दुकान की पूरी जिम्मेदारी ली। अन्य भाई भी जबलपुर आ चुके थे। इसी बीच बहिन के बच्चे की मृत्यु हो गई इसलिए वहाँ चला गया, ६ साल वहीं रहा, व्यापार में लगा रहा। यहाँ इस बीच भाभी की आग से मृत्यु हो गई और पूरा परिवार समाज से बहिष्कृत हो गया। फिर २-२॥ साल में शुद्धि हुई।

२१ वर्ष में शादी हुई, ३ बच्चे २ बच्चियाँ हैं, सुखी पारिवारिक जीवन है।

३. **पुस्तके** :–बचपन में धार्मिक पुस्तकों में रूचि थी। पर अब ध्यान के बाद धार्मिक पुस्तको में रूचि नहीं। जिनपर पहले श्रद्धा थी उनपर भी नहीं। आचार्य जी की पुस्तकों में भी खास रस नहीं।

४. **सिनेमा** :–बचपन में कम। ध्यान की शुरूआत में तेजी से बढ़ा पर धीरे धीरे कम हो गया है और अब बिल्कुल भी नहीं है। जो मनोरंजन वहाँ मिलता था उसमें अब उत्सुकता नहीं।

५. **वस्त्र** :–बचपन से ही अच्छे अच्छे वस्त्रों के लिए आकर्षण था। बाल वगैरह भी बनाता था ताकि लड़कियाँ देखें। सफेद रंग पसंद था। अभी भी अच्छे कपड़े पहनकर आकर्षण का केन्द्र बनने का मन। सफेद रंग अब भी पसंद।

६. **भोजन** :–औसत संतुलित भोजन मीठे के लिए रूचि। अब भी अच्छे, संतुलित भोजन के लिए रूचि।

७. **खर्च** :—बचपन से आर्थिक अभाव इसलिए खर्चीला नहीं। अब भी खर्चीला नहीं।

८. **स्वास्थ्य**--पहले बड़ी बीमारियाँ टी. बी. वगैरह होने की आशंका। ध्यान के करने से स्वास्थ्य ठीक, स्वास्थ्य के लिए भयमुक्त। सफाई पसंद पहले भी अब भी।

९. **पसंद**–नापसंद–अच्छे बुरे लगने का बचपन में कोई अनुभव नहीं। पहले व्यवसाय बदलने का मन था पैसे के लिये। अब ऐसा नहीं लगता कि ऐसा किया जाये।

१०. **संबंध मित्र** (Relationship)—कोई विशेष मित्र नहीं, स्वभाव से अलग रहने की आदत। बचपन से एकान्त की खोज। भीड़-भाड़ पसंद नहीं। अब अकेलेपन में कोई बाधा भी पहुंचाये तो कोई असंतोष का अनुभव नहीं। पहले Opposite sex स्त्रियों से बातचीत करने में कठिनाई। कारण मन में विकार

आयेगा, पाप लगेगा। अब कोई कठिनाई नहीं। खुलापन मन में कोई विकार नहीं ध्यान के कारण। पहले ग्राहक जब परेशान करते थे तब क्रोध आ जाता था और उन्को गालियाँ देकर बिदा कर देते थे। पर ध्यान से शांति आ गई है कार्य व्यवसाय में कुशलता आ गयी है। ग्राहक संतुष्ट होकर जाते हैं। अब किसी के प्रति गलत भाव नहीं असंतुष्टि नहीं। व्यवहार कुशलता बढ़ गई है। शाँत मनोस्थिति से कुशलता बढ़ गई है।

११. मानसिक तनाव--अर्थहीनता (Mental-Tension--Meaning lessness)--ऊपर प्रेरणा में बताई घटनायें मानसिक तनाव की ही चित्र हैं। आर्थिक अभाव भी मानसिक तनाव का कारण रहा। पर ध्यान से उपलब्ध मानसिक शांति से बहुत सी परेशानियां दूर हो गईं। नफा, नुकसान का ज्यादा प्रभाव नहीं खास खुशी या दर्द भी नहीं। बचपन से चली आने वाली ईश्वर की खोज, शांति की खोज अब बंद हो गई है। पहले संसार के प्रति प्रेम नहीं बस आत्मा की उन्नति की चिन्ता रहती थी। अब संसार से कोई विरक्ति नहीं और आत्मा की उन्नति की कोई विशेष चेष्टा भी नहीं। ध्यानके पहले संसार असार निराशापूर्ण लगता था। जीवन व्यर्थ है ऐसा भाव बहुत अधिक था। ठीक से दिशा न मिलने के कारण शादी के पहले संसार छोड़ने, आत्म-हत्या करने का भी मन था। शादी से इंकार भी किया। ध्यान के पहले व्रत, उपवास आदि से कोई संतोष या समाधान नहीं मिला। अब ऐसी कोई स्थिति नहीं है, जीवन भी व्यर्थ नहीं लगता। ध्यान के पहले व्यापार में अरुचि, निराशा, मात्र आत्म शुद्धि के लिए मन। सब छोड़ें ऐसा लगता था। अब सब सहज और सुचारू है। मेरी आर्थिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा है। पैसा पैदा करने की वही धुन नहीं है। अब तो कर्त्तव्य भावना ज्यादा है। असफलता में भी असंतोष नहीं है।

१२. नींद और स्वप्न--नींद पहले भी ठीक थी। अब भी ठीक है। स्वप्न अधिक आते थे। सैक्स से संबंधित स्वप्नों के कारण स्वप्नदोष भी अधिक होता था। अक्सर जानवरों में शेर, हाथी, साँप आदि के स्वप्न प्राकृतिक दृश्यों के स्वप्न भी दिखायी देते थे। अब स्वप्न तो आते हैं पर स्वप्न दोष बिल्कुल नहीं होता। सैक्स संबंधी स्वप्न भी नहीं आते। हाँ जानवरों के स्वप्न अब दिखते हैं।

१३. ध्यान, शिविर, के प्रति भाव (Attitude towards meditation camps)-- ध्यान से मानसिक शांति मिलती है। शारीरिक बाधाओं के लिए अधिकतम लोगों को शिविर में भाग लेना चाहिए। शिविर का आकर्षण अभी भी है। ४--५ शिविरों में भाग लिया है। ध्यान की तरफ ज्यादा रूचि है। ध्यान से जब शांति का अनुभव होता है तब आचार्य जा के प्रति अत्यंत आभार और कृतज्ञता का भाव आता है। आदर और प्रेम उठता है। माथेरान शिविर में तीसरे दिन ध्यान के बाद इतना प्रेम प्रगट हुआ कि मैं एकान्त में उनके चरणों पर गिर पड़ा और खूब रोया। रोने से खूब हल्का हो आया। आचार्य जी के प्रति प्रेम और आदर का भाव पूर्ववत है। शिविर मेरे लिए साधना एवं विचार के लिए बहुत उपयोगी हैं।

क्या आपको भी ध्यान के परिणाम स्वरूप कुछ नये अनुभव हुए हैं और जीवन--व्यवहार में परिवर्तन हुआ है? अपने अनुभवों को इन्हीं आधारों पर इसी क्रम में साथ में सैक्स (Sex) वृत्ति तथा अन्यों पर एवं परिवार पर प्रभाव के क्रम और जोड़कर लिखकर--भेजने के लिए आप सप्रेम आमंत्रित हैं। पता है--नरेन्द्र, द्वारा आचार्य रजनीश कमला नेहरू नगर जबलपुर (म० प्र०)

वर्षों से हम

अपनी श्रेष्ठतम सेवायें

प्रस्तुत कर रहे हैं

धुम्रपान के अनोखे आनंद के लिये

नंबर

22

छाप बिड़ी

पीजीये.

निर्माता वृजलाल मणीलाल एन्ड कं. गोंदिया.

तुलसी मानस प्रकाशन

गुप्ता मिल्स स्टेट, बम्बई-१०

श्री हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित :–

१. संसार का सार (मू. रु. ३) आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक साधनों, जीव जन्तुओं, वनस्पतियों विभिन्न व्यवसायक व्यक्तियों तथा पदार्थों आदि के द्वारा अध्यात्म शिक्षा देने का यह प्रयत्न नवीन होते हुये अपने प्रस्तुतीकरण के ढंग और साथ ही विवेचन के संदर्भ में एक नवीनता को लिए हुये है। —नवभारत टाइम्स, बम्बई

२. ज्ञान साधना (मू. रु. २) लोनावाला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों के ज्ञानसाधना के प्रति संकेत।

३. विज्ञान से ज्ञान (मू. रु. १) ऐक्सरे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर अध्यात्मविद्या नवयुवकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास है।

४. वेदान्त नवनीत (मू. १.५० पैसे) सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे हुए महात्माओं के प्रवचनों का सार है।

५. वेदान्त का सरल बोध (मू. रु. १) वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों के सिद्धान्त बड़े ही सरल उदाहरणों द्वारा समझाकर पाठकों के सामने रखे गये हैं।

६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल [हिन्दी व अंग्रेजी] (मू. रु. ३) इस पुस्तक में ज्ञान की गम्भीर बातों को सूत्र रूप में बाँध कर उन्हें चित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वाक्य हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हैं।

७. मुमुक्ष [आध्यात्मिक उपन्यास] (मू. रु. ३) आध्यात्मिक दृष्टि से पात्रों के जीवन किस प्रकार उपन्यास पाठकों की भौतिक दृष्टि को बदल सकते हैं, इस विषय में एक अत्यन्त ही नया प्रयोग है।

८. मन की शांति [पद्य] (मू. रु. ४) अंग्रेजी मूल रचना 'पीस आफ माइण्ड' का अनुवाद, जिसमें मन की शान्ति देने वाली गहन आध्यात्मविद्या को सरल भाषा में पद्यबद्ध किया गया है।

९. हमारी परम्परा (मू. २ रु.) हमारी ऋषि परम्परा क्या है और उसे जीवन में किस प्रकार उतारा जाए—

और

आध्यात्मिक मासिक

म न न

जिसमें प्रति मास भारत के उच्चकोटि के विद्वानों के लेख एवं प्रख्यात संत-महात्माओं की अनुभव-पूर्ण वाणी को संकलित कर पाठकों तक पहुंचाया जाता है।

एक प्रति ४० पैसे

वार्षिक ४ रु० दो वार्षिक ७ रु० तीन वार्षिक १० रु०

चार वार्षिक १२ रु० और पांच वार्षिक १५ रु०

आचार्य श्री का प्रकाशित साहित्य

	हिन्दी	गुजराती	मराठी
१. साधना पथ	३।००	३।००	३।००
२. क्रांति बीज	३।००	२।५०	२।५०
३. सिंहनाद	१।५०	१।२५	३।००
४. मिट्टी के दिए	३।००	३।५०	—
५. पथ के प्रदीप	३।००	३।००	—
६. संभोग से समाधि की ओर	३।५०	—	—
७. आचार्य रजनीश समन्वय, विश्लेषण, संसिद्धि	७।५०	—	—
८. मैं कौन हूं ?	२।००	२।००	—
९. नए संकेत	२।००	१।७५	—
१०. अज्ञात की ओर	२।००	२।००	—
११. सत्य की खोज	३।००	—	—
१२. अंतर्यात्रा	३।५०	—	—
१३. शांति की खोज	२।००	—	—
१४. सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१।२५	१।५०	—
१५. सूर्य की ओर उड़ान	१।००	१।००	—
१६. प्रेम के पंख	०।७५	०।७५	०।७५
१७. कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१।००	०।७५	—
१८. अमृत कण	०।६०	०।५०	०।५०
१९. अहिंसा दर्शन	०।५०	०।५०	०।५०
२०. नई दिशा, नई बात	०।३०	—	—
२१. न आंखों ने देखा न कानों ने सुना	०।१५	—	—
२२. क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०।३०	—	—
२३. युवक कौन ?	०।३०	—	—
२४. युवक और यौन	०।३०	—	—
२५. नए मनुष्य के जन्म की दिशा	०।७५	०।७५	—
२६. अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गांधी और मेरी चिंता)	५।००	—	—

प्राप्ति स्थल :

[१] जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी. एन. रोड, बंबई : १ फोन : २६४५३०।

[२] मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७।

[३] स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर।

[४] आर. अंबानी एंड कं०, अपोजिट : जिमखाना, राजकोट।

[५] चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा, बड़ौदा।

[६] मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा वाराणसी।

[७] मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना।

[८] भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जलंधर शहर।

[९] नरसिंह भाई पटैल, सहकारी मुद्रणालय, कोठारी मार्ग, सुरेंद्रनगर।

[१०] सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद।

[११] बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद।

[१२] सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर—२

[१३] हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

[१४] सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर।

[१५] युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेज के सामने, जबलपुर।

[१६] श्री आर. के. पुंगालिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना–२

[१७] श्री महेन्द्र कुमार मानव, विन्ध्याचल प्रकाशन, छतरपुर (म० प्र०)

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित

नई साज-सज्जा में

आचार्य श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति–शिखा

मूल्य ५) वार्षिक

संपादक : श्री महीपाल

(आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें)

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,

डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१

Phone : 264530

"साक्षी चेतना ही व्यक्तित्व को निखारती है।"

नगर का गौरवशाली प्रतिष्ठान

श्री अरविन्द वस्त्र भंडार

फेन्सी कपड़े के व्यौपारी

जवाहर चौक, सुरेन्द्र नगर (गुजरात)

उत्तम तम्बाकू और कुशल कारीगरों से बनी

शेर और पहलवान छाप बिड़ी

भारत में अग्रणी है

मोहनलाल हरगोविंददास

जबलपुर म० प्र०

मानसेवी संपादक : अजित कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे ।

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक एवं मुद्रक : युक्तांद प्रकाशन समिति, कमला नेहरू नगर, जबलपुर ।

मुद्रण स्थल : जबलपुर को-आपरेटिव प्रिंटिंग प्रेस, गोलबाजार, जबलपुर ।

वर्ष : १ ।। अंक : १६ ।। १६ फरवरी १९७० ।। मूल्य : एक प्रति : ०.६० न० पै० ।।

।। वार्षिक : १२ रु० ।।

ಕಲಾ ಪ್ರಪಂಚ